प्रकाशक
चाँदमल सीपाणी
मन्त्री
श्री जिनदत्तसूरि मण्डल,
दादावाडी, अजमेर

:

आवृति पहली

वीर स. २०६६
वि. स. २०२७
अप्रेल १६७०

मूल्य दो रुपया

प्रति ११००.

::

मुद्रक
प्रतापसिंह लूणिया
जॉब प्रिंटिंग प्रेस,
ब्रह्मपुरी, अजमेर.

समर्पण

यह श्री सिद्धर्षिगणि द्वारा
धर्म विवेचन
का
आंशिक संकलन
उन भव्य और भद्रीक सज्जनों
को
जिन्हे अंध श्रद्धा से संतोष नही होता
किन्तु
जिन्हे जीवन मार्ग दर्शक कल्याणकारी धर्म
का मनुष्य के अनुभवो पर आधारित
वास्तविक सत्य स्वरूप
जानने की और समझने की
और
यथा शक्ति पालन करने की
उत्कट इच्छा हो

अनुक्रमणिका।

प्रकाशक का निवेदन

श्री जिनदत्तसूरि ज्ञान माला का चौदहवां पुष्प आपके समक्ष रखते हुए हमे बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

प्रस्तुत पुस्तक श्री गोपीचन्दजी धाड़ीवाल का सिद्धर्षिगणि रचित उपमिति भव प्रपचा कथा के आधार पर मनन करने योग्य सकलन के रूप मे है। सकलन की विचारधारा अति व्यापक एव प्रेरणाप्रद है।

सकलनकर्त्ता ने जो कुछ लिखा है, वह 'उपमिति' का आधार लेते हुए लिखा है। इससे पाठको को धर्म व ससार का वास्तविक रूप सोचने व समझने की प्रेरणा अवश्य मिलेगी और यह प्रेरणा जीवन का निर्माण करने मे सहायक होगी।

श्री धाड़ीवालजी ने अपना यह सकलन मण्डल को प्रकाशनार्थ प्रदान करने के साथ प्रकाशन खर्च भी दिया है एतदर्थ मण्डल उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है।

यहाँ यह लिखना अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा कि मण्डल की सब ही योजनाओ को श्री धाडीवालजी तन, मन व धन से परिपुष्ठ करते हुए प्रगति की ओर ले जा रहे हैं। वास्तव मे यदि उनका इतना सहयोग हमे नही मिलता तो मण्डल की योजनाओ का कार्यान्वित होना कठिन ही नही वरन् असम्भव था।

चाँदमल सीपाणी

अप्रेल १, १९७०

मंत्री, श्री जिनदत्तसूरि मण्डल
दादावाडी, अजमेर

प्रस्तावना

उपदेश देने का प्रबल साधन कथानुयोग है। कथा वार्ता के लेखकों मे यदि विविध विषय ग्राही, लोकोत्तर आदर्शों से नियन्त्रित अद्भुत बुद्धि-चातुर्य, असाधारण प्रतिभा, उत्तम काव्य कुशलता और अपूर्व रसपोषकता भी घुली हुई हो तो जो कार्य कथानुयोग द्वारा साधा जा सकता है, वह शुष्क उपदेश द्वारा कभी नही साधा जा सकता। इन शब्दो से स्व० मोतीचन्द गि० कापडिया श्री सिद्धर्षिगणि विरचित उपमिति भव प्रपचा कथा के गुजराती अनुवाद की प्रस्तावना आरम्भ करते हैं।

जैन कथा साहित्य विशाल है, वह भारत की प्रत्येक भाषा मे उपलब्ध है और भारतीय सस्कृति को प्रभावित करने मे उसका महत्वपूर्ण स्थान है। जैन कथानुयोग मे उपमिति भव प्रपचा कथा का विशेष महत्व है।

इस ग्रथ द्वारा श्री सिद्धर्षिगणि ने ससार का पूरा प्रपच, पूरा नाटक बहुत ही आकर्षक रूपक के ढग मे बताया है। ससार मे हिंसादि कुकृत्यो, क्रोधादि कषायो, मनो विकारो और इन्द्रियो की लोलुपता से इसी जीवन मैं कुपरिणाम बता कर इनसे मनुष्य किस प्रकार ऊपर उठकर निज का कल्याण कर सकता है, सुन्दर रूपको द्वारा, और वह भी रूखे शब्दो मे नही,

किन्तु बहुत ही आकर्षक भाषा मे बताया है। ईसाई धर्म मे इसी प्रकार का एक रूपक Pilgrims Progress प्रसिद्ध है, पर वह न तो आकार मे और न भावो और महत्व में इसके निकट भी आ सकता है।

यह ग्रथ सरल संस्कृत भाषा मे है, और इसका गुजराती मे रूपान्तर स्व० मोतीचन्द गिरधरदास कापड़िया ने बहुत ही आकर्षक भाषा मे किया है जिसकी कुल पृष्ठ संख्या लगभग २१०० है। इसीके आधार पर यह छोटी सी पुस्तक तैयार की गई है।

श्री सिद्धर्षिगणि ने इस ग्रथ मे जैन धर्म का वास्तविक स्वरूप दर्शाया है, वह आज की धर्म नामक वस्तु से बहुत भिन्न है।

धर्मोपदेश के लिये, क्रियाओं और अनुष्ठानो के लिये जैन धर्म मे पात्रता का बड़ा महत्व है जिसका कि वर्तमान काल मे कोई भी मूल्य नही रहा है। मूल ग्रथ मे एक स्थान पर गुरु महाराज कहते हैं हम जहा तक बने, अयोग्य प्राणी के सम्बन्ध मे प्रयास नही करते। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, योग्य प्राणी को ही देना चाहिये। अयोग्य प्राणी को देने से उद्देश्य की पूर्ति नही होती, किन्तु उल्टे विपरीत परिणाम निकलते है। योग्य प्राणी की व्याख्या की गई है—प्राणी चाहे मिथ्या-दृष्टि हो, पर भव्य हो और स्वभाव से भद्रक हो।

आज हर कोई मुनि वेश धारण करने मात्र से साधु बन जाता है। ग्रथ मे मुनियो के अन्य गुणो के अतिरिक्त निम्न लिखित गुण भी बताये गये है जिनसे आज के मुनिगण की

तुलना की जाने योग्य है। मुनि कैसे हो ?—वे अनुकूल सयोगो मे लुब्ध नही हो जाते है, अपना चित्त प्रवाह पर लक्ष्य पूर्वक ध्यान रखते है, मन की गति के प्रतिरोध पर पहले से ही तैयारी रखते हैं, असंगता के अभ्यास द्वारा मन को जागृत रख कर उसे सदा निर्मल रखते है, वाहरी कोई भी विषय उन्हे विक्षेप करे ऐसा कभी होने नही देते, अपना जीवन इतना विशुद्ध कर ऐसी मानसिक निर्मलता की साधना करते है कि शरीर मे रहते हुये भी मोक्ष सुख प्राप्त करने के स्वय योग्य है, ऐसी स्पष्ट प्रतीती होने लगती है।

मुनि दीक्षा लेने के लिये पात्रता आवश्यक है। वह है अनिष्टकारी मित्रो (मोह क्रोधादि) का साथ छोड़ना, कल्याणकारी मित्रो (क्षमा, सयमादि) का सग करना, योग्य मर्यादाओ का उलघन न करना, इत्यादि। एक कथानक मे गुणधारण राजा को मुनि दीक्षा लेने की अधीरता पर श्री निर्मलाचार्य कहते है कि पहले तू दश कन्याओ से सम्बध कर तभी तुझमे पात्रता आयगी। वे दश कन्याएँ ये है—शान्ति, दया, मृदुता, सत्यता, ऋजुता, अचौर्य, मुक्तता, ब्रह्मरति, मानमी-विद्या और निरीहता। राजा के फिर भी दीक्षा के लिये जल्दी करने पर आचार्य ने फिर कहा यह अनुष्ठान और सद्गुणो का अभ्यास परमार्थ से तो दीक्षा ही है। तू अनेक वार साधु-वेश धारण कर चुका है पर तूने यह गुण प्राप्त नही किये, इसलिये वह द्रव्य दीक्षा, साधु वेश निरर्थक ही रहे, उनसे उद्देश्य पूर्ति नही हुई। इसीलिये उद्देश्य पूर्ति के लिये उन गुणो को प्राप्त कर, यही वास्तविक दीक्षा

है। यह सिद्धर्षिगणि के अनुसार दीक्षा और आज क्या परिस्थिती है ?

श्रावक की योग्यता प्राप्त करने के उपाय भी ग्रथ मे कैसी सुन्दर रीति से बतलाये गये है—दयालु होना, किसी का तिरस्कार न करना, क्रोध व दुर्जन सग का त्याग, पर गुणो से प्रेम का अभ्यास, चोरी के विचार का भी त्याग, मिथ्याभिमान और पर स्त्री पर कुदृष्टि का त्याग, धन, ऋद्धि ज्ञानादि के मद का त्याग, परगुणो को ग्रहण करना, स्व गुणो की प्रशसा पर नही फूलना, परोपकार और, शुद्धाचरण करना।

इसी प्रकार उच्च श्रेणी के श्रावक जो श्रावक व्रत लेने के अधिकारी हो सकते हैं और सम्यग्दर्शी कहलाते हैं उनकी पहिचान प्रशम, सवेग, निर्वेद, आस्तिक्य और अनुकम्पा गुणो से होती है। इनके सिवाय कई अन्य विशेषताऐं भी इनमे बतलाई गई है।

आज इन महत्व पूर्ण बातो की ओर किसी का भी ध्यान नही है। आज धर्म एक सस्ता सौदा, क्रय विक्रय की वस्तु या अध श्रद्धा रूपी अफीम की पुड़िया बना दी गई है।

आज धर्म का उद्देश्य केवल परलोक सुधारना बताया जाता है, मानो इस लोक से उसका कोई सम्बध ही नही है, पर श्री सिद्धर्षिगणि कहते हैं कि सुन्दर मनुष्य-भव अभिमान मे, असत्य भाषण मे, जिह्वा लोलुपता (या ऐसे ही अन्य दुर्गणो) मे पड़कर नष्ट न करो। ऐसा करोगे तो इस मनुष्य जीवन मे ही विविध प्रकार की पीडा पाओगे और अन्त मे दुर्गति

प्राप्त करोगे। ग्रथ मे जितनी कथाऐ है उन सब मे इस बात पर जोर दिया गया है कि कुकृत्यो के दुष्परिणाम इसी भव मे मिल जाते है, जिससे मनुष्य को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिले। आज का जीवन समस्याओ मे फसे मनुष्य को परलोक की सोचने की फुरसत ही कहा, पर आज प्राय उपदेशो मे इस जीवन मे मिलनेवाले परिणामो की ओर कोई ध्यान ही नही देता और इस प्रकार धर्म से विश्वास उठता जाता है।

महत्वपूर्ण बातो को समझाने का बडा अनोखा ढग देखने मे आता है। उदाहरण के लिये हम देखते हैं कि प्राणी के तीन कुटुम्ब बडी सुन्दरता से दर्शाये गये है। पहला कुटुम्ब क्षमा, मान-त्याग, सरलता, लोभ-त्याग, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुख, सत्य, शौच, तप, सतोषादि है जो कि आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं। दूसरा कुटुम्ब है क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि जो आत्मा के स्वभाव के विपरीत हैं और मनुष्य के भी अस्वाभाविक गुण अर्थात् दोष है। ससार मे इनको हर कोई दूषण ही बताएगा, सद्गुण नही कहेगा। व्यक्तिगत जीवन मे और ससार मे ये दुख के ही कारण है, इससे भी कोई इनकार नही कर सकता। तीसरा कुटुम्ब है सासारिक सम्बधी लोग, ये सदा साथ नही रहते। जन्म लेते रहते हैं व मरते रहते है। उपदेश यह दिया गया है कि प्रथम के दोनो कुटुम्बो के विषयो मे विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और वह भी गहराई के साथ जिससे दोनो के गुण दोषो को अच्छी तरह समझा जा सके। ज्ञान प्राप्त कर उस पर श्रद्धा उत्पन्न होनी चाहिये और फिर जो आदरणीय हो उसके अनुसार

चारित्र क्रिया और व्यवहार का पालन करना चाहिये। दूसरा कुटुम्ब त्यागने योग्य है, और तीसरा कुटुम्ब प्राय दूसरे का पोषणकारी है इसलिये दूसरे अधम कुटुम्ब के त्याग के लिये तीसरे कुटुम्ब का भी त्याग करना होता है। पर दूसरे अधम कुटुम्ब का त्याग करे विना ही तीसरे अर्थात् घर गृहस्थी का त्याग करे, जैसा कि आज होता है निरर्थक है। आज ऐसा महत्वपूर्ण उपदेश कहा सुनने मे और समझाने मे आता है। आज तो गृहस्थ के उत्तरदायित्व से भागना ही धर्म है चाहे क्रोधादि अवगुण वैसे ही जीवित रहे।

ग्रथ मे कथानक के रूप मे मनुष्य की कुप्रवृत्तियो के बीच का घोर सग्राम, जो ससार मे सदा ही चलता रहता है बडी सुन्दरता से बताया गया है। दोनो ओर के महाराजाओ, मत्रियो, सेनापतियो, हाथो, घोडो, रथो सहित सेनाओ और सैनिको, राजदूतो इत्यादि का बडा सुन्दर वर्णन किया गया है।

पूरे ग्रथ का सार है मनुष्यो को कुप्रवृत्तियो से निवृत्ति प्राप्त करने की चेष्टा करते रहना चाहिये, इसीसे लोक और परलोक दोनो मे सुख मिलता है। और पूर्ण निवृत्ति से पूर्ण शाश्वत अमिश्रित सुख अर्थात् मोक्ष। इसी से जैन धर्म निवृत्ति प्रधान माना गया है। पर यहाँ भी आधुनिक विचारधारा दूसरी ही है। यहाँ निवृत्ति का अर्थ करने मे भार दिया गया है घर बार, काम धधा छोडने और साधु का वेश धारण करने पर, न कि कुप्रवृत्तियो से निवृत्ति पाने पर। यह त्याग केवल साधन मात्र है और वह भी सच्चे भावो के बिना साधन

भी नही रहते, केवल काया क्लेश-जड क्रिया मात्र रह जाते हैं। पर आज साध्य तो भुला दिया गया है और भावना हीन साधना को ही साध्य का स्थान दे दिया गया है। तभी तो क्या साधुओ मे और क्या श्रावको मे चारित्र बल और आत्म-बल प्राय दृष्टिगोचर ही नही होता।

जिस रूप मे जैन धर्म आज निवृत्ति प्रधान बताया जाता है, वह जैन विद्वानो मे भी आत्म हीनता के भाव उत्पन्न करता है, क्योकि प्रवृत्ति बिना ससार जीवित ही नही रह सकता। मनुष्य को जीवित रहने के लिये प्रवृत्ति आवश्यक है। भगवान ऋषभदेव के समय से ही ससार कर्मभूमि हो गया और उन्होने ही मनुष्य को जीवित रहने के लिये प्रवृत्ति करना सिखाया और कुप्रवृत्तियो से निवृति के लिये अहिंसा का आदर्श रखा। निवृत्ति जिस अर्थ मे आज कही जाती है सर्व साधारण का ध्येय नही हो सकती है और वह मनुष्य के और मनुष्य समाज के उत्थान या आत्म विकास की जगह पतन का कारण हो सकती है। पर जिस अर्थ मे जैन धर्म मे निवृत्ति बताई गई है, उसे प्राप्त करना चाहे कठिन कहा जाय, पर अशक्य नही और आदर्श के रूप मे और प्रेरणा के रूप मे, नास्तिक बुद्धिवादी भी उसमे आपत्ति नही कर सकते। वह निवृत्ति व्यक्तियो को केवल परोक्ष मोक्ष मे ही नही पहुँचा सकती है, पर जिस मात्रा मे मनुष्य उसका जीवन मे पालन करता है उस मात्रा मे उसे इस जीवन मे भी प्रत्यक्ष सुख दायक और कल्याणकारी है। वह धर्म है और अर्थ तथा, काम और मोक्ष तीनो का हेतु है। व्यक्ति के लिये ही क्यो, आज ससार मे जो विनाशकारी वातावरण फैला हुआ है, वह इसी

निवृत्ति सिद्धान्त की उपेक्षा का ही परिणाम है। आज अतर-राष्ट्रीय क्षेत्र मे ही क्यो, जीवन के प्रत्येकक्षेत्र मे महत्व सिवाय, हिसा, असत्य, चोरी अब्रह्म् (विषय लोलुपता) परिग्रह (शोषण इत्यादि) क्रोध-मान माया लोभादि के और किस वात का है। राजनैतिक चाले, युद्ध, सधिया, कमजोर राष्ट्रो पर दबाव तथा सभी क्षेत्रो मे शोषण इत्यादि इन्ही की शाखाऐ है।

आज श्वेताम्बर जैनियो मे प्रति दो सौ या तीन सौ श्रावको के पीछे एक एक साधु साध्वी है और श्रावको मे भी कितनी ही तपस्याऐ होती हैं, आधुनिक अर्थ मे यही निवृत्ति है पर इसके सुपरिणाम तो दृष्टिगोचर नही होते। यदि जिस अर्थ मे जैन धर्म निवृत्ति प्रधान माना गया है उस अर्थ वाली अगर यह निवृत्ति होती तो वह ससार को भी जाज्वल्यमान कर देती।

जैन दर्शन की दृष्टि को इस ग्रथ मे श्री सिद्धर्षिगणि ने वहुत व्यापक वताई है। उनका कथन है कि जो वीतराग है द्वेष से मुक्त है, मोह को नाश करनेवाला है, सर्वदर्शी (न कि सकीर्ण दर्शी) और सर्वज्ञ है वही शरीर धारी परमात्मा, पथ प्रदर्शक है और शरीर त्यागने पर देव है। जो यह सत्य स्वरूप समझता है उसे नाम से मोह नही होता। ऐसे देव को चाहे जिनेश्वर कहे चाहे महेश्वर, वुद्ध या व्रह्मा, शब्दो के भेद से अर्थ भेद नही है।

यह कितना सुन्दर विवेचन है कि परमार्थ दृष्टि से धर्म एक ही है। यह स्वय शुद्ध और शुद्ध गुणो से भरपूर है। ये

गुण है क्षमा, दया, मार्दव, निर्मलता (शौच) तप, सयम, लोभ-त्याग, सत्य, ब्रह्मचर्य, सरलता और त्याग। मूल भाव नाश न हो तो शब्दो के भेद मे कोई दोष नही। समझदार मनुष्य तो भीतर का भावार्थ ही विचारते है। जो प्राणी यथा योग्य दृष्टिवाले है तात्त्विक शुद्ध और विशाल दर्शन मे ही रहने वाले होते है उनमे यह मेरा यह तेरा ऐसी दृष्टि नाश पा चुकी होती है। ऐसे प्राणी वाद विवाद मे नही उतरते। वे इस बात का भान कराते है कि सब के भीतर गहराई से उतरे तो समानता ही दृष्टि-गोचर होगी।

मोक्ष प्राप्ति के मार्ग के विषय मे भी उनकी ऐसी ही विशाल दृष्टि है। जैन धर्म की इस विशाल व्यापक दृष्टि से ससार के किसी भी धर्म का मत भेद नही हो सकता है। इस शुद्ध स्वरूप मे वह जग कल्याण कर सकता है। पर आज हमसे यह स्वरूप ओझल हो गया है। आज जैन धर्म स्वयं ही सम्प्रदायो, गच्छो, भेदो-प्रभेदो मे विभक्त होकर एक दूसरे को मिथ्यात्वी बताता है।

इस सक्षिप्त विवेचन से उपमिति भव प्रपचा कथा का महत्व समझा जा सकता है। यह एक अद्‌भुत ग्र थ है जिसमे कथानको के आकर्षक रूप मे मनुष्य की कमजोरियो, और कुभावनाओ का प्रभाव, और उनसे ऊपर उठने का मार्ग जो कि जैन धर्म का वास्तविक स्वरूप है, बड़ी उत्तम रीति से समझाया गया है। यह चित्त को शान्तिदायक, जीवन को नया प्रकाशदायक और सद्‌विचारोत्पादक है।

यह प्रश्न स्वाभाविक है कि आज जैन धर्म का इतना

सुन्दर स्वरूप उपेक्षित क्यो हो गया और वह इतना कुरूप कैसे हो गया तथा ऐसे महत्वपूर्ण ग्रथो का प्रचार क्यो नही हुआ। ऐसा जान पड़ता है कि कई शताब्दियो से श्रावको को शिक्षा तो धन कमाने की शिक्षा तक सीमित हो गई, और धर्म सम्बधी सारा भार साधुओ पर रह गया और उस भार ने सत्ता का रूप ले लिया। सत्ता का दुरुपयोग भी स्वाभाविक है। अपनी सत्ता कायम रखने के लिये ऐसे ग्रंथो की रचना होने लगी जिससे अध भक्ति और अध श्रद्धा वढे। साधु की योग्यता का सच्चा मापदड बतानेवाला ग्रथ ऐसी स्थिति मे कैसे प्रचार पा सकता है। ऐसी अवस्था मे तो जैन सिद्धातों का मनमाना अर्थ होने लगा। जिसके जो मन मे आया भगवान के वचन कह कर उसका प्रचार किया, या उसे किसी प्रसिद्ध पूर्वाचार्य के नाम से प्रचारित कर दिया। यदि किसी ने शका की तो सघ के बाहर निकालने की धमकिया दी जाने लगी। समय समय पर कुछ चारित्रोद्धारक श्रमण भी हुए पर उनकी विशेष नही चली। श्रीमद् राजचन्द्र जैसे श्रावक आत्म ज्ञानियो के विषय मे भी अनर्गल बाते कह कर उनके प्रति भी उपेक्षा के भावो का प्रचार किया गया। इसे काल का प्रवाह कहो चाहे भवितव्यता कहो, यथाकथित विद्वानो मे भी स्वतत्र विचार शक्ति, अन्वेषण शक्ति नही रही, वे भी केवल लकीर पीटने के अतिरिक्त अपनी विचार शक्ति का उपयोग करने मे असली से नकली को छाटने मे, समर्थ नही हुये। और यदि कोई ऐसी चेष्टा करता है तो सत्य की खोज मे सहायक न होकर, बाधक हो जाते हैं। इस प्रकार जैन धर्म प्राणहीन हो रहा है।

समय बदल रहा है, अधश्रद्धा बहुत दिन नही चलेगी। यदि सत्य साहित्य का प्रचार नही होगा तो जैन धर्म जीवित नही रहेगा।

धर्म के वास्तविक रूप की पाठको को कुछ झाँकी मिले, जिससे सत्य को ढूढने के लिये गहराई से प्रयास करे, इस उद्देश्य से इस महान् ग्रथ उपमिति भव प्रपचा कथा के कुछ अशो का सकलन कर यह पुस्तक तैयार की गई है। लेखक कोई धर्म का विद्वान नही है इसलिये पुस्तक मे अनेक भूले हो सकती है, पर आशा है वे भूले भी सत्य शोध की प्रेरणा देगी और अधकार को हटा कर प्रकाश लानेवाली भावना का प्रचार करेगी।

ग्रथकार की किन्चित जीवनी और उन्ही के द्वारा लिखी ग्रंथ की प्रस्तावना का सक्षिप्त विवरण भी इसमें दिया गया है जिससे मूल ग्रंथ की रूप रेखा से भी पाठक परिचित हो जावें।



ग्रंथ कर्ता श्री सिद्धर्षिगणि

प्रभावक चरित्र के अनुसार श्री सिद्धर्षिगणि का जन्म श्रीमाल (भिल्लमाल) नगर मे वर्मलात राजा के प्रधान सुप्रभदेव के पुत्र शुभकर की सुपत्नी लक्ष्मी की कुक्षि से हुआ था। इनका विवाह धन्या नामक अति रूपवती स्त्री के साथ हुआ था। यौवन, कौटम्बिक सत्ता और धन समृद्धि के कुप्रभाव से ये जुआर व्यसन मे फस गये और रातें व्यसनी मित्रों को सगत मे विताने लगे। यह व्यसन उन्हे जोरो से लग गया और उनकी प्रेमालु पत्नी रातों उनकी वाट जोती रहती। इस दुश्चिता ने धन्या का स्वास्थ्य विगाड दिया। उसकी दशा देखकर उसकी सास बहुत दुखी हुई और उसे इस दशा का कारण पूछने लगी। बहुत दबाने पर धन्या ने सास को सब बाते बता दी। सास ने बहू को सो जाने को कह दिया, और स्वय पुत्र की प्रतीक्षा मे जागती बैठी रही।

आधी रात के पश्चात् जब सिद्ध घर लौटा और दरवाजा खटखटाया तो माँ ने प्रश्न किया कि इतनी रात गये कौन आया है ? सिद्ध ने उत्तर दिया तब माता ने बनावटी क्रोध बताते हुये कहा कि इतनी रात गये आनेवाला मेरा पुत्र सिद्ध कदापि नही हो सकता, तू कोई अन्य है इसलिये द्वार नही खोला जा सकता। इस पर सिद्ध ने कहा कि तब मै कहाँ

जाऊँ। माता ने कडक कर उत्तर दिया कि जहा का द्वार खुला हो वही तू चला जा।

माता पुत्र को बहुत प्यार करती थी, उसे सत्मार्ग पर लाने के लिये ही उसने ऐसा कडा व्यवहार दिखलाया।

सिद्ध ने इसे अपना अपमान समझा और वह तुरन्त वहा से चल पडा। ऐसे समय तो द्वार साधुओ के निवासस्थान के ही खुले रहते है क्योकि वहा चोरी का तो कोई भय नही रहता है। सयोग वश वह ऐसे ही एक धर्म स्थान मे घुसा तो देखता है कि वहा कोई साधु तो ध्यान कर रहा है, कोई धर्म पाठ कर रहा है, तो कोई अन्य धार्मिक कियाएँ कर रहा है। सिद्ध दृढ निर्णयी था, अपमानित होकर घर जाना उसके लिये कैसे सम्भव था। वहाँ का दृश्य उसे अद्भुत लगा। उसने माता का मन मे उपकार माना कि उसके वचनो के कारण ही उसे ऐसा अवसर मिला। अपने आपको भी धन्य मानने लगा और वह गुरु महाराज के सामने जाकर खडा हो गया। गुरु ने उससे कई प्रश्न किये और सिद्ध ने उनके उत्तर दिये, जिस से गुरु प्रभावित हुये। उनकी असाधारण ज्ञान उपार्जन शक्ति, उनके दृढनिश्चयी मनोबल को वे समझ गये। फिर बातो ही बातों मे गुरु ने उनकी परीक्षा ली और कहा कि हमारे पास तो हमारे जैसा होकर ही रहना पडता है, यह मार्ग अति कठिन है। उन्होने बताया कि साधारण त्याग ही कितना कठिन है। उनके साथ रहने से त्याग, तप, ब्रह्मचर्य, सहनशीलता अस्वाद भोजन वह भी गोचरी रूप मे, केश लोच इत्यादि कई कार्य समता पूर्वक करने पडते हैं और यह सब

लोह के चने चबाने जैसे है। इस पर भी सिद्ध ने दीक्षा लेने की इच्छा बताई। तब गुरु ने पिता की आज्ञा की अनिवार्यता बताई। उधर उसके पिता ने उसकी खोज का आदेश दिया और अन्त मे उसे गुरु महाराज के स्थान पर पाया। वहा पिता ने उसे कई तरह समझाया पर वह अपने निश्चय पर अटल रहा। अन्त मे पिता ने आज्ञा दे दी। तब गुरु ने सिद्ध को दीक्षा दे दी।

श्री सिद्धर्षिगणि ने दीक्षा लेने पर बहुत तप किया और खूब सिद्धात का अभ्यास किया। उन्हे तर्क, न्याय इत्यादि के गहरे अभ्यास की बहुत रुचि थी, उनकी इच्छा बौद्ध गुरुओ के पास रहकर अभ्यास करने की हुई और उन्होने अपने गुरु से आज्ञा मागी। गुरु ने भी उनकी योग्यता परखी और बहुत तर्क वितर्क के पश्चात् उन्हे आज्ञा दे दी। पर गुरु ने कहा तुझे वहा बौद्धो की तरह रहना होगा, उनके ग्रथो का और सिद्धान्तो का अभ्यास करना होगा। न्याय तर्क ऐसी वस्तु है कि मनुष्य को चक्कर मे डाल देती है। तूने जो कुछ अब तक अर्जन किया है वह सब खो बैठेगा। श्री सिद्धर्षिगणि ने आश्वासन दिया कि वह इस प्रकार पदच्युत नही होगा। गुरु ने अन्त मे आज्ञा देते हुये कहा कि मै इच्छा करता हूँ कि तेरी सद्‌बुद्धि रहे और ज्ञानोपार्जन कर जल्दी ही वापस लौटे, परन्तु मै एक बात कहता हूँ कि यदि किसी कारण से तेरा मन भ्रमित हो जाय तो मेरा दिया हुआ रजोहरण तू मुझे पुन लौटा देना। श्री सिद्धर्षि ने बडी नम्रता पूर्वक गुरु को कहा कि आप मेरे विषय मे ऐसी शका क्यो रखते है, आप के ज्ञान दान से मेरी आखे खुल गई हैं फिर भी आप के

संतोष के लिये आप की यह बात मैं स्वीकार करता हूँ।

श्री सिद्ध बौद्धो के यहाँ गये और वहाँ उन्होने अभ्यास आरम्भ किया। बडे-बडे विद्वानो को भी घबरा देनेवाले, ऐसे शास्त्रो का जैसे खेल मात्र मे उन्होने अभ्यास कर लिया। भिन्न भिन्न ग्रन्थो मे वे पारगत हुये। तर्क शक्ति और वादक कला मे बडे बडे नैयायिको को वे आश्चर्य चकित करने लगे। उनके शिक्षक बौद्ध गुरु इनकी बुद्धि विशालता, विवेचक शक्ति और चातुर्य देख कर चकित हो गये। इस प्रकार वे लोग प्रभावित होकर उन्हे अपने ही मत मे रखने की इच्छा से, उन्हे तरह तरह से समझाने लगे और उन्हे अपने बडे गुरु पद पर बैठाने की बात करने लगे। इस प्रकार से धीरे धीरे उनका मन फिरते फिरते, उन्होने जैन धर्म भुला दिया और बौद्ध दीक्षा देने की तैयारी कर ली। हटात श्री सिद्ध को अपने पूर्व गुरु के सामने रजोहरण लौटाने की प्रतिज्ञा याद आई और वे किसी भी तरह बौद्धो को समझा बुझाकर वहा से पूर्व गुरु के पास जाकर रजोहरण लौटाने के लिये चल पडे। गुरु के पास पहुँचे, पर वे अब पहलेवाले सिद्ध नही थे। उनका व्यवहार गुरु के प्रति विनय और विवेकहीन था। गुरु अनुभवी बुद्धिशाली थे। स्थिति समझने मे उन्हे देर नही लगी। गुरु ने अपने उच्च आसन को छोडकर सिद्ध को उस पर बैठाया और श्री हरिभद्रसूरि कृत ललित विस्तरा नामक चैत्य-वन्दन विषयक ग्रथ उनके हाथ मे देकर बोले कि मैं मन्दिर भगवान के दर्शन कर आता हूँ तब तक तुम यहा बैठो और इस ग्रथ का अवलोकन करो। सिद्ध अभ्यास रसिक तो था ही। ग्रथ पढने लगे। गुरु के आने मे देर हुई तब तक

पढते रहे। पढते पढते पूर्व संस्कार जागृत हुये। गुरु महाराज के लौट कर आने तक उनके विचार पुन. बदल गये, ग्रंथ पर और उसके कर्ता पर आदर भाव जागृत हुये और निज की चपलता पर पश्चाताप। वे पुन. पूर्व मार्ग पर आ गये। गुरु से क्षमा मागी। गुरु ने उन्हे पुन स्वीकार किया। इस ग्रंथ का उन पर इतना प्रभाव हुआ कि उन्होने अपने ग्रंथ उपमिति भव प्रपचा कथा मे उसके कई पूरे वाक्यो का समावेश किया है। यह है उस महान् रूपक ग्रंथ उपमिति भव प्रपंचा कथा के महान् ग्रंथकार की सक्षिप्त जीवन कथा। उन्होने इस ग्रंथ की समाप्ति जेष्ठ शुक्ल ५ संवत् ६६२ तदनानुसार तारीख १ मई सन् ६०६ ई० को की। इस ग्रंथ की रूपरेखा, ग्रंथ कर्ता की लिखित प्रस्तावना के आधार पर हम आगे दे रहे है।

अति दुर्लभता से प्राप्त मनुष्य जन्म और शुभ कर्मोदय से सब अनुकूलता प्राप्त कर, भव्य प्राणी को, तजने योग्य भावनाओ का त्याग करना चाहिये, करने योग्य कार्यो को करना चाहिये, प्रशसा करने योग्य विषयो और भावो का वखाण करना चाहिये, और सुनने योग्य विषयो को सुनना चाहिये।

श्री सिद्धर्षिगणि

उपमिति भव प्रपंचा कथा

श्री सिद्धर्षिगणि की प्रस्तावना

इस कथा का आशय यह है कि किसी भी प्रकार से इस ससार का विस्तार बताना। यद्यपि यह ससार सब प्राणियों के दैनिक अनुभवो का विषय है, तब भी प्राणी उसे परोक्ष ही समझता है। मानो उसका उससे कोई सम्बध ही नही है। इसी कारण से इस ग्र थ मे इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया जाता है।

यह कथा दो प्रकार की है—अतरग और बहिरग। पहले अंतरंग कथा का वर्णन किया जाता है। इस कथा के आठ प्रस्ताव (भाग) किये गये हैं उनका सार यहां दिया जाता है।

प्रथम प्रस्ताव उपोद्घात रूप है। इसमे जिस हेतु से इस कथा की रचना की गई है उसका प्रतिपादन किया गया है।

दूसरे प्रस्ताव मे एक भव्य पुरुष, सुन्दर मनुष्य योनी पाकर आत्महित के लिये 'सदागम' से परिचय करता है, और उसके साथ रहता है। सदागम की सूचना पर उसी के समक्ष रहकर अगृहीतसंकेता को बताने के बहाने से उसे सम्बोधन कर 'ससारी जीव'—निज का चारित्र(जीवन कथा)कहता है। 'प्रज्ञाविशाला' तथा भव्य पुरुष वह चारित्र सुनते हैं। इस

प्रस्ताव मे तिर्यंच गति मे किये हुये संसारी जीव के अनेक भवो का प्रतिपादन किया गया है।

तीसरे प्रस्ताव मे वह ससारी जीव मनुष्य भव पाता है परन्तु हिसा और क्रोध के वश मे और स्पर्शेन्द्रीय के प्रभाव में गिरने से अनेक दुख पाता है और इस प्रकार कष्ट पाकर वह अपने मनुष्य जन्म को ही भ्रष्ट करता है और यह सव दशा ससारी जीव अपने मुख से सुनाता है। यहा प्रथम अव्रत हिसा, प्रथम कषाय क्रोध और प्रथम इन्द्रिय स्पर्शेन्द्रिय पर विवेचन तथा इनके प्रपंच वताये गये है।

चौथे प्रस्ताव मे, असत्य, मान और जिह्वा स्वादेन्द्रिय के वश मे फस कर ससारी जीव कैसे कैसे दुख भोगता है और किस प्रकार ससार मे वार वार जन्म मरण कर भटकता है वताया गया है। इसमे दूसरे अव्रत असत्य दूसरे कषाय मान और दूसरी इन्द्रिय जिह्वा पर विवेचन किया गया है और उनके प्रपच वताये गये हैं।

पाचवें प्रस्ताव मे तीसरे अव्रत चोरी तीसरे कषाय माया तथा तीसरी इन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय विपाक के सम्वंध में संसारी जीव अपनी जीवन कथा कहता है और इन सव के प्रपचो की कथा कहता है।

छटे प्रस्ताव मे चौथे अव्रत मैथुन, चौथे कषाय लोभ और चौथी इन्द्रिय चक्षु, पर विवेचन तथा उसके प्रपंच ससारी जीव अपनी जीवन कथा द्वारा वताता है।

सातवे प्रस्ताव मे महामोह पाचवे अव्रत परिग्रह और पाचवी इन्द्रिय श्रवणेन्द्रिय द्वारा किये गये प्रपचो का विवेचन करता है।

इस प्रकार दूसरे से सातवे तक छ प्रस्तावों मे हिंसा, असत्य, चोरी मैथुन तथा परिग्रह इन पाच आश्रव के कारण (अव्रत) से तथा पांचो इन्द्रियो द्वारा और चार कषायों द्वारा तथा महामोह की परवशता के कारण संसारी जीव पर अनेक दुख गिरते हैं उनका वर्णन करने मे आया है। ये सब प्रपच कितने ही तो स्वयं ससारी जीव के अनुभव मे आये हुये है और कई और कितने ही उसने अन्यो से सुना है पर ये सब वह इस प्रकार वर्णन करता है जैसे स्वय के ही अनुभव किये हुये हों।

आठवें प्रस्ताव मे उपरोक्त सब परिस्थितियो का मेल बैठता है और ससारी जीव अपनी आत्मा का हित करता है। संसारी जीव का भव प्रपच का इस प्रकार ससार पर अत्यंत विराग उत्पन्न करनेवाला चारित्र सुनकर भव्य पुरुष को बोध (ज्ञान) प्राप्त होता है, परन्तु बार बार प्रेरणा करने पर बड़ी कठिनाई से अगृहीतसकेता बौद्ध प्राप्त करती है। केवल ज्ञान रूपी सूर्य से प्रकाशमान निर्मलाचार्य से, पूर्व भव मे मिले हुए संसारी जीव ने अपने पूर्व भवो का सब वृत्तात समक्ष रखा था, और सदागम द्वारा ससारी जीव को बार बार से स्थिर मन कराने से उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ था इससे उसने ये सब बातें प्रतिपादन की हैं।

इस कथा मे अतरग व्यक्तियो के ज्ञान, बातचीत, गमनागमन, विवाह इत्यादि सब लौकिक बाते कही गयी हैं, इन सबको अनुचित नही समझना चाहिये क्योंकि उपमा द्वारा बोध कराने के उद्देश्य से ऐसा किया गया है। विद्वानो का

कथन है कि प्रत्यक्ष या अनुभव से जो सिद्ध होता हो और युक्ति से उसमे कोई दोष नही दीखता है, उसे सत्कल्पित उपमान कहते हैं, और शास्त्रो मे कई जगह इस प्रकार की उपमान कथाऐ दृष्टिगोचर होती है।

अब बहिरग कथा का वर्णन किया जाता है। मेरू पर्वत के पूर्व दिशा मे महाविदेह क्षेत्र मे सुकाछ नाम एक विजय (प्रात) है जिसमें क्षेमपुरी नामक एक नगरी है जो वहाँ की राजधानी है। वहां का स्वामी अनुसुन्दर नामक चक्रवर्ती था। यह अपने जीवन के शेष भाग मे अपने राज्य पर्यटन के लिये निकला। फिरते फिरते वह शंखपुर नगर मे पहुँचा। उस नगर के बाहर एक चित्तरम नामक सुन्दर चित्त प्रफुल्लित करनेवाला उद्यान था। उस उद्यान के बीचो बीच मनोनदन नामक एक जैन भवन है। इस भवन मे एक समय, समन्तभद्र नामक महा विद्वान आचार्य पधारे, उनके पास एक महाभद्रा नामक पवित्र साध्वी, सुललिता नामक भोली पवित्र राजकुमारी, पुंडरिक नामक राजपुत्र और अन्य अनेक लोगो की बड़ी सभा एकत्रित हुई। अपने ज्ञान से यह जानकर कि अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने महा पाप किये है, विद्वान समन्तभद्रसूरि ने कहा "बाहर लोगो मे जिस के विषय मे बडा कोलाहल हो रहा है वह ससारी जीव नामक चोर है, उसे वधस्थान पर ले जाया जा रहा है" आचार्य महाराज के ऐसे वचन सुनकर, महाभद्रा साध्वी ने विचार किया कि जिसका आचार्य महाराज ने इस प्रकार वर्णन किया है वह नरक गामी जीव (प्राणी) होना चाहिये। ऐसे विचारों से उस साध्वी के मन मे करुणा उत्पन्न हुई और उस वधस्थान पर लिये जानेवाले जीव के पास

गई। साध्वी के दर्शन से उस ससारी जीव को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। फिर उसने साध्वी द्वारा आचार्य महाराज की कही हुई बात सुनी और वैक्रिय लब्धि द्वारा चोर का वेष धारण कर साध्वी के साथ आचार्य महाराज के समक्ष आया (यह स्वय अनुसुन्दर चक्रवर्ती ही चोर के रूप मे आचार्य महाराज के सामने आया) राजपुत्री सुललिता ने इस चोर का हाल पूछा। आचार्य महाराज ने उस चोर को ही सब वृत्तात सुनाने को कहा। तव उस चोर ने अपना जीवन वृत्तात भव स्वरूप, उस राजपुत्री को सवेग उत्पन्न होकर बोध प्राप्त हो इस दृष्टि से उपमा रूप में कह सुनाया। राजपुत्र जो कि निकट ही बैठा सब वृत्तात सुन रहा था, वह लघु कर्मी था इसलिये उसे तुरन्त बोध हो गया। पर उस भोली सुललिता मे अज्ञान (कर्म) दोष अधिक था इसलिये बार बार उसे संबोधन कर कर बातें कही जाती थी तब भी उसे बोध नही होता था। अत मे बहुत प्रेरणा देने पर बहुत कठिनता से उसे बोध प्राप्त हुआ। तत्पश्चात उन सब की आत्मा का हित हुआ और वे सब मोक्ष गये।

यह कथा शरीर मन मे धारण कर लक्ष्य मे रखना चाहिये। इन सब बातो का स्पष्टीकरण आठवें प्रस्ताव मे किया गया है।

सर्वज्ञ निरुपित सिद्धात रूप समुद्र के एक बिन्दु तुल्य, यह कथा है ऐसा समझना चाहिये। दुर्जन मनुष्य इस कथा के सुनने योग्य नही है। अमृत बिन्दु और काल कूट विष का कैसा सम्बन्ध। दुर्जन अधम मनुष्यो के दोषो का बिचार

ही नही करना चाहिये। ऐसे पापी मनुष्यो की कथा करने की भी क्या आवश्यकता ? यदि दुर्जन मनुष्यो की स्तुति भी की जाय तो भी वे तो उसमे भी दोष ही बतलायेंगे और वैसा ही प्रचार करेंगे। उनकी निन्दा की जायगी तो और भी विशेष कुप्रचार करेंगे। इसलिये ऐसे व्यक्तियो के प्रति उपेक्षा ही रखना उचित है। "अधम दुर्जन लोगो की निन्दा करने से स्वय मे दुर्गुण आते हैं और उनकी स्तुति करने से असत्य भाषण का दोष आता है। इसलिये ऐसे लोगो के सम्बन्ध मे तो आख बन्द ही रखना चाहिये" इसलिये क्षीर समुद्र समान निर्मल और विशाल मनवाले गम्भीर हृदयी, लघु कर्मी भव्य सज्जन ही इस कथा के पढने के अधिकारी हैं। ऐसे सज्जनो की निन्दा नही करना चाहिये और उनकी प्रशसा की आवश्यकता नही। इनके सम्बन्ध मे मौन धारण करना ही श्रेष्ठ है। क्योकि ऐसे गुणी सज्जनो की निन्दा करना तो महा पाप है, और मेरे जैसे जड़बुद्धि, उनके योग्य स्तवन करने मे शक्तिमान नही। ऐसे सज्जनो की प्रकृति ऐसी होती है कि काव्य मे इनकी प्रशसा न की जाय तब भी वे उस काव्य मे जो भी गुण हैं, वे उन्हे देखते है ! और दोष हो तो उन्हे छिपा देते हैं। वे तो प्रकृति से ही दूध को ग्रहण करते हैं और पानी को फैंक देते है और इसके लिये अपनी प्रशसा की राह नही देखते हैं। उनसे तो यही विज्ञप्ति है कि वे इस कथा को बराबर श्रवण करे इसीलिये यह सब कुछ कहा गया है।

हे भव्य प्राणियो! अपना मन स्थिर कर ध्यान देकर मुझ

पर कृपा कर जो मैं कहता हूं श्रवण करना।

जो कुछ चित्त को सहज ही मलीन करे, और मोक्ष मे बाधक हो वह चाहे मन संबंधी हो, चाहे वचन या काया संबंधी, उन सबको, अगर प्राणी अपने हित का इच्छुक है तो त्याग देना चाहिये।

—श्री सिद्धर्षिगणि

जिस कार्य के करने से मन मोती की माला, बर्फ, गउदूध या चन्द्र जैसा निर्मल हो, ऐसे कार्य बुद्धिमान मनुष्य को करना चाहिये।

श्री सिद्धर्षिगणि

धर्म की महिमा

यह लोक (संसार) अकृत्रिम है, किसी का बनाया हुआ नहीं है। काल अनादि अनन्त है। आत्मा शाश्वत, अविनाशी है। सब संसार प्रपंच कर्म रचित है। आत्मा और कर्म का सम्बन्ध प्रवाह रूप है और अनादि है। मिथ्यात्व, अविरति कषाय और योग, कर्म बन्धन के कारण हैं। संसार प्रपंच उत्पन्न करनेवाले कर्म दो प्रकार के होते हैं। कुशल रूप अर्थात् शुभ और अकुशल रूप अर्थात् अशुभ। कुशल रूप शुभ कर्म पुण्य अथवा धर्म कहलाते है, अकुशल रूप अशुभ कर्म, पाप अथवा अधर्म कहलाते हैं। पुण्य के उदय से प्राणी सुख अनुभव करता है और पाप से दुख। कम और अधिक, पाप और पुण्य के अनन्त भेद होते है उसी के अनुसार प्राणी अनन्त प्रकार और भेद के होते है। इस प्रकार सारा संसार प्रपच कर्म जनित है।

संसार मे भटकते प्राणी का- इस भव मे प्रेमपूर्ण अन्तःकरण वाला पिता, स्नेह मई माता, अभिन्न हृदयी भाई, स्नेहभरी बहन, प्रेमालु भार्या, प्रीतिवान कुशल मित्र, आनन्दमय पुत्र, शील सौन्दर्य युक्त पुत्री, सदाचारी बन्धु वर्ग, विनयी परिवार, यह सब धर्म ही है। धर्म ही राजा है, चक्रवर्तीपन, देवपन, इन्द्रपन है। धर्म ही वृद्धावस्था-और-मृत्यु-विहीन वह सुन्दर, शक्तिशाली शरीर है। धर्म ही शास्त्रों के अर्थ रूप शुद्ध शब्द ग्रहण करनेवाला कान है,

कल्याणदर्शी आख है। धर्म ही मन को आनन्द देनेवाला रत्नो का और सोने का ढेर है। अनन्त काल तक एकान्त सुख प्राप्त कराने वाला धर्म ही है।

धर्म चार प्रकार का

यह धर्म चार प्रकार का है, दानमय, शीलमय, तपमय, और भावनामय। योग्य पात्र को स्वशक्ति अनुसार दान कर, सर्व पापो को छोड़ दे (सर्व विरति व्रत) अथवा स्थूल पापों को छोड (देश विरति व्रत) अथवा बने उतना प्राणातिपात, असत्य वचन, चोरी, पर स्त्री गमन, अपरिमित वस्तु सचय, रात्रि भोजन, मद्यपान, मास भक्षण, सचित्त फल भोजन, मित्रद्रोह इत्यादि जो भी तू त्याग सके उसका त्याग कर (शील), अपनी शक्ति अनुसार तप (तपस्या) कर और वार-वार उत्तम शुभ भावनाओ का चिन्तन कर। इस प्रकार जीवन यापन से निस्सन्देह और अवश्य तुझे इस भव मे और पर भव मे कल्याण प्राप्त होगा।

मुनि के गुण

वे संसार के पदार्थो और भावो को नाशमान और मूल्यहीन समझते है। वे यहा सन्तोष रूपी अमृत का पान करते हैं। विषय रूप भयंकर विष के महान् दुखद परिणाम जानते हैं। वे सर्व वस्तुओ पर सम भाव रखते है, स्वय अत्यन्त निस्पृही होते है, उनका मन केवल मोक्ष प्राप्ति की ओर लगा रहता है, इसलिये उपदेश देते समय उनकी दृष्टि मे इन्द्र जैसे रगृद्धिशाली मे और भिक्षुक मे, महान् ऋद्धि

वाले देव मे और निर्धन पुरुष मे, चक्रवर्ती मे और रंक मे कोई भेद नही। इसी प्रकार उदार धनिक मे और कृपण के प्रति व्यवहार मे वे कोई अन्तर नही करते। उनके विचारो मे ऐश्वर्य और दरिद्रता, रत्नो का ढेर और पत्थरो का ढेर, चादी के ढेर और मिट्टी के ढेर सब समान है। उनके लिये महारूपवान स्त्री और लकडी की पुतली समान है। इस प्रकार होने के कारण उपदेश देने मे उनकी विशुद्ध वृत्ति सिवाय परोपकार के और किसी कारण से नही होती। उनकी स्वार्थ की साधना भी स्वाध्याय, ध्यान, तपश्चर्या आदि मे ही है। इसलिये वे उपदेश भी अपनी स्वार्थ साधना की वृत्ति से नही देते, वे प्राणियो से किसी भी प्रकार की आशा नही रखते, किसी भी प्रकार के लाभ की आशा रखना उनके लिये असभव है।

चार पुरुषार्थ

संसार मे चार प्रकार के पुरुषार्थ होते है धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष। इनमे से कितने ही लोग अर्थ को ही मुख्य पुरुषार्थ गिनते हैं। पैसे के भण्डार से सुशोभित पुरुष का शरीर, वृद्ध, और जीर्ण हो गया हो तो भी वह युवक ही दिखता है, वह कायर हो तो भी वीर दिखता है और उसके गीत वड़े साहसी, अतुल्य पराक्रमी के रूप मे गाये जाते है। वर्णाक्षर नही जानता है तो भी लोग एक वडे विद्वान्, बुद्धिशाली के रूप मे उसकी स्तुति करते हैं। महा कुरूप और घृणा उपजाने जैसी शक्ल सूरत हो तो भी खुशामदी लोग उसके रूप की कामदेव के रूप के समान प्रशंसा करते हैं।

वह प्रभाव हीन हो तो भी उसके धन के लोभी व्यक्ति उसे महाप्रभावशाली कहते है । सात पीढो मे भी उससे कोई सम्वन्ध न हो तो भी लोग उसे निकट सम्बन्धी कहते है। यह सव भगवान अर्थ धन देव की लीला है। सव पुरुपो के आँख कान इत्यादि समान होते हुये भी, कोई तो दानी है कोई याचक, कोई राजा है, कोई सेवक, कोई तरह तरह के इन्द्रिय सुख भोगते है, तो कोई कोई उदरपूर्ती मे भी असमर्थ, कितने ही दूसरो का पोषण करने योग्य होते है, तो कितने ही दूसरो द्वारा पोपण पाने योग्य होते है। यह जितने भी भेद है धन के सद्भाव अथवा अभाव से ही उत्पन्न होते है। अर्थ को मुख्य पुरुषार्थ माननेवालो की दृष्टि मे इस प्रकार अर्थ ही मुख्य पुरुषार्थ है, इसलिये धनहीन पुरुप एक तिनके के समान है और उसे सव धिक्कारते है।

कितने ही लोग काम (इन्द्रिय भोग-विषय सुख) को मुख्य पुरुषार्थ मानते है। उनकी मान्यता है कि जब तक नवयौवन ललना के मुख कमल के ओष्ठों का अमृतपान न किया जावे तब तक पुरुप का पुरुषत्व ही नही, क्योकि धन सग्रह करने का, कला मे कुशलता प्राप्त करने का, मनुष्य जन्म प्राप्त करने का, और धर्म का, वास्तविक फल तो काम ही है। यह सव सुन्दर सामग्री प्राप्त हो, पर उनके द्वारा काम न साधा जा सके तो यह सव व्यर्थ ही है। जो व्यक्ति भोग भोगने को तत्पर है उन्हे भोग की सामग्री धन, स्त्री इत्यादि स्वत ही मिल जाते हैं। अन्य पुरुषो को लाखो सोना मोहर खर्च करने से जो मद हास्य प्राप्त नही होता, करोडो सोना मोहर खर्च करने से जो कटाक्ष प्राप्त नही होते, न आलिगन

प्राप्त होता है, यह सब सुख कामी पुरुष को स्वतः ही प्राप्त हो जाते है इसलिये काम को मुख्य पुरुषार्थ माननेवालो की दृष्टि मे काम ही मुख्य पुरुषार्थ है। इसके बिना रसविहीन लकडी के समान काम रहित पुरुष का जीवन धिक्कार है।

कितने ही प्राणी धर्म को प्रधान पुरुषार्थ मानते है। उनका कहना है कि सब प्राणियो का जीवन समान होते हुए भी कोई तो ऐसे कुल मे जन्म लेता है जहा अथाह धन सम्पत्ति है, अनेक प्रकार के सुख और आनन्द के साधन है जिनके कुल का सारा ससार मान करता है। और कोई ऐसे कुल मे जन्म लेता है जहा धन का नाम ही नही है, जहा ससार के सब दुख आ पड़े हैं, जिनके कुल को सब निन्दा करते हैं। यह सब अन्तर किस कारण से है। तथा एक ही माता पिता से उत्पन्न, साथ ही उत्पन्न (जुड़वा) बालको मे अन्तर क्यो होता है उनमे भी एक तो कामदेव जैसा सुन्दर, मुनि जैसा शात प्रकृतिवाला, अभयकुमार जैसा बुद्धि वैभवशाली, क्षीर समुद्र जैसा गभीर, मेरू पर्वत जैसा स्थिर, धनजय जैसा शूरवीर, कुबेर जैसा भण्डारवाला, कर्ण जैसा दानी, वज्र जैसे बलिष्ठ शरीरवाला, देवताओ के समान बुद्धि वाला, सर्व कलाओ मे प्रवीण, माता-पिता तथा सब लोगो को आनन्द देनेवाला होता है, और साथ मे ही जन्म प्राप्त करने वाला दूसरा पुत्र दुष्टचित्त, मूर्खशिरोमणी, तुच्छ प्रकृति-वाला, चपल, भीरू, दरिद्री, कृपण, अधम रोगी, दुखी, ससार का करुणा पात्र, दीन, उद्वेगपूर्ण, घोर नरक जैसे दुखो का भागी, लोगो की दृष्टि मे पापिष्ट, निन्दा का भागी, घृणित

होता है। इस प्रकार एक ही माता-पिता के एक साथ उत्पन्न दो बालको मे ऐसा अन्तर होने का कारण क्या ?

एक और बात विचारणीय है। दो पुरुष समान उच्च बल, बुद्धि, उद्योग पराक्रम, समान मानसिक और शारीरिक शक्ति होते हुये, एक ही तरह उद्योग मे प्रयास करते हुए और सब तरह समान होते हुए भी एक धन उत्पन्न करने के लिये अनेक प्रवृत्ति करे, खेती वाड़ी करे, पशु पालन करे व्यापार करे, राजकीय सेवा करे या अन्य कोई धंधा करे, सब मे सफलता प्राप्त करे, अपनी इच्छा पूर्ण करे, और दूसरे किसी भी कार्य मे, सब कुछ करते हुये भी सफलता प्राप्त न करे और यदि पूर्वजो से कुछ धन मिला हो तो उसे भी नष्ट कर दे। इस सब का कारण क्या ?

यह भी विचारणीय है कि दो पुरुषो को एक ही समय उच्च प्रकार के इन्द्रिय सुख देनेवाले विषय प्राप्त होते है, उनमे से एक तो पूर्ण शक्ति और लगन पूर्वक उन्हे बार बार भोगता है, और दूसरा कृपणता या रोग के कारण भोगेच्छा होते हुये भी नही भोग सकता है, ऐसा कई बार देखने मे आता है। ससार मे इस प्रकार की अनेक विशेषताए बराबर देखने मे आती है ऊपर ऊपर देखने से तो कोई कारण दृष्टिगोचर नही होता है। और बिना कारण के कोई कार्य नही होता। या तो यह भिन्नताएँ होना ही नही चाहिये, या इनका कारण होना चाहिये।

वास्तव मे उपरोक्त विशेषताओ और भिन्नताओ का अतरग कारण धर्म है। यह महात्मा धर्म ही प्राणी को उत्तम कुल मे उत्पन्न कराता है, गुणी बनाता है उसके कार्यो को

सफलता देता है, प्राप्त भोग को भोगने का अवसर देता है और अन्य कई प्रकार की विशेषताएँ प्राप्त कराता है। धर्म के प्रताप से ही सुन्दर सयोग मिलते है, कार्यो मे सफलता मिलती है, और इच्छित वस्तुएँ प्राप्त होती है। इसी प्रकार अप्रिय विशेषताएँ अधर्म के कारण से होती है। बुरे परिणाम, नीच कुल मे जन्म, धधे और व्यवसाय मे निष्फलता, प्राप्त भोग न भोगने पाना, इत्यादि अप्रिय घटनाये और परिणाम अधर्म ही उत्पन्न कराता है। इसलिये जिस धर्म के प्रभाव से यह सब सम्पत्तियां मिलती हैं, वही प्रधान पुरुषार्थ है,। अर्थ और काम की प्राणी चाहे जितनी इच्छा करे, बिना धर्म के वह प्राप्त नही होती। और यदि प्राणी मे धर्म है तो वह किसी वस्तु की इच्छा करे या न करे तो भी सब सुन्दर वस्तुये उसको मिल जाती हैं। इसलिये जो प्राणी अर्थ और काम पुरुषार्थ साधने की इच्छा रखता हो उसे धर्म पुरुषार्थ साधने की खास आवश्यकता है। इसलिये धर्म ही प्रधान पुरुषार्थ है।

अनत ज्ञान, अनत दर्शन, अनत वीर्य, अनत आनन्द रूप मूल अवस्था प्रगट करानेवाला मोक्ष नामक चौथा पुरुषार्थ है। वह सर्व प्रकार के क्लेश समूह का नाश करनेवाला और स्वाभाविक स्वय स्वतत्र रूप से भोग सके ऐसी आल्हाद जनक स्थिति उत्पन्न करानेवाला होने के कारण मुख्य पुरुषार्थ मोक्ष ही है, पर धर्म पुरुषार्थ द्वारा ही साध्य होने के कारण धर्म को ही प्रधान पुरुषार्थ कहा है। धर्म, धन की इच्छावाले को धन और काम की इच्छावाले को काम देता है और मोक्ष भी धर्म ही दिलाता है। इसलिये

धर्म ही प्रधान पुरुषार्थ है और धर्म विना के, पाप मे रचे हुये प्राणी पशुओ के तुल्य है और धिक्कार योग्य हैं।

जो प्राणी मोह से अन्धे हो गये है वे धर्म को नही देख सकते हैं। पर जिनमे विवेक है उनकी दृष्टि मे धर्म प्रत्यक्ष है। सामान्यत धर्म के तीन स्वरूप है, कारण, स्वभाव और कार्य। जो जो सदानुष्ठान उदाहरणार्थ-सामायिक, पौषध, देव पूजा, गुरु वदन इत्यादि किये जाते हैं ये धर्म के कारण है। धर्म का स्वभाव दो प्रकार का है साश्रव और अनाश्रव। साश्रव स्वभाव प्राणी मे शुभ कर्म परमाणुओ का संग्रह रूप है। अनाश्रव स्वभाव पूर्व एकत्रित कर्म परमाणुओं का नाश रूप है। (आश्रव द्वारा कर्म परमाणु आत्मा मे आते है, संवर द्वारा उनका आना रुकता है और निर्जरा द्वारा वे आत्मा से अलग हो जाते है।) अनाश्रव मे संवर और निर्जरा का समावेश होता है। धर्म के इन तीनो कारण, स्वभाव और कार्य को उपचार से धर्म ही कहते हैं।

धर्म के साश्रव स्वभाव को पुण्यानुवधि पुण्य कहते हैं। यह कर्मो के उदय आते (विपाक के) समय, नये पुण्य कर्म का वध कराता है। जो स्वभाव, विपाक के समय, पहले के वाधे हुए शुभ अथवा अशुभ कर्मो का नाश करता है वह अनाश्रव स्वभाव कहलाता है। इसे निर्जरा भी कहते है।

धर्म के जो कारण अर्थात् सदानुष्ठान रूप कारण है, आदर योग्य है, क्योकि यही स्वभाव और कार्य प्राप्त कराते है। यह सदानुष्ठान मुख्यत दो प्रकार के हैं। साधु धर्म और गृहस्थ धर्म। इन दोनो धर्मो का मूल सम्यग् दर्शन है।

सम्यग्दर्शन

जो परमात्मा राग, द्वेष, और मोह आदि रहित हो, जो अनन्त ज्ञान दर्शन वीर्य, आनन्द स्वरूप हो, जो समस्त ससार के सकल प्राणियो पर उपकार करने मे तत्पर हो, जो सकल और निष्कल रूप हो, ऐसे अनेक गुणो से युक्त जो परमात्मा है, वही वास्तव मे देव है, ऐसी बुद्धि से अन्त करण पूर्वक उसकी भक्ति करना (देवतत्व) और उस राग द्वेष रहित भगवान के बताये हुये, जीव, अजीव (जड), पुण्य (सुखानुभव), पाप (दुखानुभव), आश्रव (कर्म ग्रहण करने के मार्ग), सवर (कर्म आश्रव रोकने के मार्ग), निर्जरा (कर्म हटाना); बध (कर्म का आत्मा के साथ बधन) और मोक्ष (कर्म से आत्मा का पूर्णरूपेण मुक्त करना) इन नौ पदार्थों को अच्छी तरह समझना, स्वीकार करना और उसमे विश्वास रखना (धर्म तत्व) और उस परमात्मा के बताये हुये ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप मोक्ष मार्ग मे जो प्रवृति करे वे ही सच्चे साधु और गुरु होने और वदना करने योग्य है (गुरु तत्व) ऐसी बुद्धि होना इसका नाम सम्यग्दर्शन है ।

प्राणी मे यह सम्यग्दर्शन है या नही यह जानने के लिये उसमे पाच लक्षण अर्थात् पाच बाह्य चिन्ह, पाच लिग, होना चाहिये जिससे यह पहचान हो सके कि वह सम्यग्दर्शन प्राप्त व्यक्ति है । वे लक्षण ये हैं

१. प्रशम, अर्थात शान्त, क्रोध का त्यागी ।

२. सवेग–मोक्ष, प्राप्त करने के योग्य वस्तु है ऐसे निर्णय पूर्वक उसे प्राप्त करने की अन्त करण मे अभिलाषा होना ।

३ निर्वेद–सासारिक सब पदार्थो पर अरुचि ।

४. आस्तिक्य–ऊपर बताये हुये शुद्ध देव, शुद्ध गुरु और शुद्ध धर्म पर श्रद्धा, और

५. अनुकपा–दीन, दुखी, प्राणी पर दया ।

इस प्रकार सम्यग् दर्शन, प्राप्त कर व्यक्ति सात्विक गुणो से भी अधिक विनय गुण प्राप्त करके सर्व प्राणियो पर प्रेम भाव रखता है (मैत्री), गुणवान को देख कर प्रसन्न होता है (प्रमोद), दुखी प्राणी पर दया करता है (करुणा), स्वय का अविनय या अपमान करनेवाले अथवा पाप वृत्तिवाले मनुष्य पर माध्यस्य भाव रखता है (उपेक्षा), इस प्रकार की चार भावना रखता है । इनके सिवाय उसके सम्यगद्दर्शन को दीपायमान करनेवाले पाच भाव इस प्रकार उत्पन्न हो जाते है

(१) स्थिरता चित्त की स्थिरता ।

(२) भगवान के मन्दिर की सेवना वहा जाना और उसकी समाल रखना ।

(३) आगम कुशलता शास्त्राध्ययन, श्रवण, वाचन इत्यादि

(४) भक्ति और

(५) शासन प्रभावना ।

सम्यग्दर्शन को दृढ़ रखने के लिये निम्न ५ दूषणों से बचना चाहिये

(१) शका तीर्थंकर महाराज के वताये हुये विशुद्ध तत्व मार्ग मे शका करना या उसमे सन्देह करना ।

(२) आकाक्षा इस भव की या पर भव की अपेक्षा रख कर धर्माचरण करना अर्थात् यह मानकर धर्म क्रिया करना कि अमुक क्रिया से अमुक फल मिलेगा ।

(३) विचिकित्सा—ऐसी शका या सन्देह रखना कि वीतराग का वताया हुआ मार्ग निरर्थक है, इसमे कोई हित नही ।

(४) पाखडी प्रशसा—राग, द्वेष इत्यादि दुर्गुणी देव और गुरु की प्रशसा ।

(५) पाखडियो की सगति करना ।

इस प्रकार सर्व कल्याण की जड, और दर्शन-मोह नीच कर्म के क्षयोपशम से प्रगट हुये आत्मा के परिणाम को विशुद्ध सम्यग्दर्शन कहते है ।

तात्पर्य यह है कि सम्यग्दर्शन मे, सर्व प्रकार का कल्याण हो ऐसे विशुद्ध गुण होते है । और जब विकास क्रम मे दर्शन मोहनीय नामक कर्म प्रकृति का क्षयोपशम होता है अर्थात् कितनी ही क्षय हो जाती है और कितनी ही दबा दी जाती है तब शुद्ध आत्म-परिणाम जागृत अवस्था प्राप्त करते हैं और उस समय जो स्थिति उत्पन्न होती है उसे सम्यग्दर्शन कहते है ।

उपदेश केवल पात्र को

गुरु महाराज कहते है "हम जहा तक बने अपात्र प्राणी के सम्बन्ध मे प्रयास नही करते, क्योकि हमको सुस्थित

महाराज ने आज्ञा दी है कि उनका ज्ञान, दर्शन और चारित्र, योग्य प्राणी को ही देना चाहिये, अयोग्य प्राणियो को नहीं, क्योकि अयोग्य प्राणी को देने से उद्देश्य की पूर्ति नही होती। केवल इतना ही नही, किन्तु उससे उलटे विपरीत परिणाम निकलते है और अनेक उपाधिया और दुख उत्पन्न होते है या वृद्धि पाते हैं। जिस प्रकार औषधि योग्य रीति से रोग समझ कर न दी जाय तो लाभ के बदले हानिकारक हो जाती है उसी प्रकार धर्म का भी अयोग्य को उपदेश देने से वह दु:ख दायक हो सकता है।

कर्म परिणाम राजा और काल परिणति रानी

इस लोक मे एक मनुजगति नामक नगरी है वह धर्म की उत्पत्ति स्थान और मोक्ष का कारण है। उसमे कई आश्चर्यकारी वस्तुएँ है और घटनाएं होती रहती हैं।

उस मनुजगति नगरी मे कर्म परिणाम नामक एक बडा राजा है। उसमे अतुल्य बल और पराक्रम है। उसने अपनी शक्ति से स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोको पर विजय प्राप्त करली है। उसकी शक्ति के वेग को स्वय इन्द्र भी बाधा नही पहुचा सकता है। वह अपना प्रचड प्रताप सर्वत्र फैलाने की दृष्टि से सर्व नीति शास्त्र को कुचल कर सारे ससार की ओर धिक्कार की दृष्टि से देखता है। वह प्राणियो के प्रति सदा दयाहीन दृष्टि रखता है। उनके दुखो के प्रति उसे किंचित भी सहानुभूति नही होती। वह जो दड देता है उस आज्ञा का अवश्य पालन होना चाहिये। इसमे किसी

की भी अपेक्षा नही रखी जाती। वह कडा शासक है। उसे खेल तमाशे बहुत प्रिय है। वह स्वयं बहुत दुष्ट है और लोभ इत्यादि सुभटो से घिरा रहता है। वह बडा योग्य भी है और नाटको के विषय मे उसे बहुत ज्ञान है। उसे अभिमान है कि उसके बराबरी का पहलवान कोई नही है और यदि वह किसी के पीछे हो जाय तो वह किसी की भी परवाह नही करता है। वह जिसे चाहे रक-भिखारी बना देता है, किसी को हैरान करता है, किसी से भिन्न-भिन्न नाटक कराता है और स्वयं आनन्दित होता है। बडे बडे लोग भी उसकी आज्ञा का पालन करते है।

कर्म परिणाम राजा किसी को कभी तो नारकी का वेश देकर यानी उसे वेदना देकर पीडा से रोता देखकर आनन्द मनाता है और उससे नाच कराता है। लोगो को पीडित देखकर मन मे सतोष और उल्लास पाता है। जब लोग उसके भय मे घबराये हुये होते है और उसकी आज्ञा मानने मे तत्पर रहते है तब अभिमान से कहता है कि हे प्राणियो! तुम त्रियच का रूप धारण कर मुझे आनन्दित करो। तब वे पक्षी का रूप धारण करते है पशुओ का, सिहादि हिसक पशुओ का, हिरण आदि का, चीटी, साप, बिच्छु आदि के अनेक रूप धारण कर उसे नाटक दिखाते है। कई प्राणी मनुष्य का रूप धारण कर कुबडा, अधा, गूगा, बहरा, बुढा आदि अनेक रूप धारण कर नाटक रचते हैं। बहुतो से देवता का भेष बना कर नाटक रचाता है जिसमे उन्हे पारस्परिक ईर्षा, द्वेष, भय मे फसे दिखाता है। इस प्रकार

से प्राणियो से तरह तरह के नाटक रचा कर स्वय प्रसन्न होता है। और उनको हैरान (त्रसित) करता है। यह इतना स्वतत्र और मनमानी करनेवाला है कि इसके उत्पात से कोई भी किसी प्राणी की रक्षा नही कर सकता।

यह नाटक भी विचित्र प्रकार के कराता है। कभी तो स्नेहियो के वियोग से करुणारस पूर्ण और कभी स्नेहियों के सयोग से सुन्दर दिखते है। कभी रोगो से भरपूर, कभी दरिद्रता के दुखो से भरे, कभी प्राणियो पर आपत्तियो के पहाड गिरते देख कर भयानक लगते हैं। कभी सुख संयोगो के कारणो से अत्यत मनोहर लगते है। कभी उत्तम कुल मे जन्म लिये हुये लोगो को कुल की मर्यादा को तिलाञ्जली देकर अधम काम करते हुये दिखाता है, उन्हे कुसगति मे फंसाकर कुलटा स्त्रियो के फेर मे पडे दिखाता है और कभो पति की प्रिय पत्नियो को कुलटाओ का रूप देता है। कितने आश्चर्यकारी नाटक कराता है। ऐसे विचित्र नाटको से ससार भरपूर है और वह राजा इन्हे केवल लीला की तरह देखता रहता है।

इस नाटक मे राग द्वेष नामक तवलाओ को दुष्टा-भिसन्धि (दुष्टाभिप्राय) नामक तबलची वजाता है। क्रोध मान नामक गायक मधुर कठ से गाते है। महामोह नामक सूत्रधार नाटक चलाता है। भोगा-भिलाष नामक व्यक्ति आरभ मे मगलाचरण करता है। काम नामक खेल तमाशा द्वारा आनन्दित करनेवाला विदूषक होता है। कृष्ण नील कापोत आदि लेश्या (मनोभाव) पात्रो की शोभा का

वखाण करती है। अनेक पात्र अनेक योनियो मे प्रवेश करते है, वहा नेपथ्य स्थान होता है, सज्ञा नाम के मजीरे, लोकाकाश रूपी रगभूमि और पुद्गल स्कन्ध नाटक करने की सामग्री समूह रहता है।

इस प्रकार सब प्रकार से तैयारी किये हुये उस नाटक मे, पात्रो का नये नये वेश मे और बार बार फेरफार कर उनको अनेक कष्ट देकर वह कर्म परिणाम राजा बहुत आनन्द मनाता है। ससार मे कोई ऐसा कार्य नही जिसको इसके मन मे आये और वह किये बिना रह जाय।

इस प्रकार यह कर्म परिणाम राजा बिना किसी की बाधा के अपनी मतानुसार करनेवाला है, उसके अत पुर मे नियति, यदृच्छा इत्यादि अनेक रूप लावण्य युक्त रानियो से भी अधिक सुन्दर अति माननीय काल परिणति नामक रानी है। वह महाराजा को अपने प्राण के समान प्रिय है। यह जो कुछ भी करती है वह प्रमाणभूत है। कोई कार्य करने से पहले महाराजा, मत्रीमडल की तरह उसकी सम्मति लेते है। यह महाराज की अत्यन्त विश्वासपात्र मित्र के समान है। विशेष क्या कहा जाय मानो कर्म परिणाम राजा के सारे राज्य का यह महारानी ही सचालन करती है। इसलिये कर्म परिणाम राजा रानी के विरह के भय से उसे कभी अकेली नही छोडता, जहा जहा वह जाता है रानी को साथ रखता है। वह रानी भी अपने पति पर बहुत आसक्त है और उसके वचन का कभी उल्लघन नही करती है। स्त्री पुरुष की पारस्परिक अनुकूलता से ही प्रेम उत्पन्न होता है और बढता

है। इसलिये उनका पारस्परिक प्रेम इतना दृढ हो गया है कि उसके टूटने का कोई भय नही है।

यह महारानी राजा के प्रेम के कारण तथा युवावस्था के कारण तथा स्त्री स्वभाव के कारण अन्य प्राणियो की विडम्वनाये देख कर अपने मन मे कुतुहल अनुभव करती है और अपना सब जगह प्रभाव फैलाने की दृष्टि से उसने अपनी सुखमा दुखमा इत्यादि नामक प्रिय सखियो को जिसे वह अपने अग के समान गिनती है, संग मे रखा है और समय, आवलिका, मुहुर्त, प्रहर, दिन, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, सवत्सर, युग, पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी, पुग्दलपरावर्त इत्यादि परिवार-नौकर चाकरो द्वारा सर्व कार्य कराने में समर्थ है। इसका उसे गर्व है। वह अपने पति के पास वैठ कर उसकी आज्ञानुसार ससार नाटक मे अभिमान पूर्वक आज्ञा देती है कि योनी रूप परदे के पीछे जो पात्र तैयारी किये हुये है वे सब हमारी आज्ञा मे वाहर निकले और सवसे पहले रुदन करे, फिर अपनी माताओ के स्तन से दूध पान करे, फिर धूल से भरे अग से रगभूमि पर घुटने के वल चलें और रगभूमि मे धूल मे खेले, फिर डगमगाती चाल से धरती पर चले और गिरे पडे, मलमूत्र मे भर कर अपने शरीर को घृणा पात्र वनावे फिर वाल्यावस्था छोडकर कुमारावस्था मे प्रवेश करे और भिन्न-भिन्न प्रकार के खेल खेले आनन्द मस्ती करे, कलाओ मे कुशलता प्राप्त करने का अभ्यास करे। फिर कुमारावस्था त्याग कर युवावस्था मे प्रवेश करे, वह महा गुरु कामदेव के उपदेशानुसार

भाति भाति के विलास करे, विवेकहीन होकर अकार्य करे, फिर मध्यमावस्था धारण कर सात्विक प्रकृति, पुरुषार्थ और पराक्रम बताए और अन्त मे वृद्धावस्था मे प्रवेश करे उसमे सफेद बाल, शिथिल शरीर, अंग भग और विचित्र प्रकृति धारण कर, जीवन के अनेक नाटक दिखाते हुये शरीर त्याग करे। फिर अन्य योनि मे जावे, निकलें और अनेक रूप धारण कर नाटक करें और फिर बारम्बार इस चक्र में चलते रहे। इस प्रकार काल परिणति रानी ससार मे सब पात्रो को निरात से नही बैठने देती है पर नित्य नये नये रूप धारण कराती है। यह रानी कर्म परिणाम राजा के सामने भी अपने व्यवहार से बताती है कि उसका प्रभाव उनसे भी अधिक है। कर्म परिणाम राजा का प्रभाव निवृति नगर मे नही चलता है पर इस महारानी को प्रभाव वहा भी है। इस प्रकार अद्भुत ससार नाटक मे निरत प्रवृत्त कर्म परिणाम राजा और काल परिणति महारानी मन मे बहुत आनन्द भोगते हैं।

सतत् चिंतन एव तद्रूप आचरण द्वारा जीवन की तैयारी में प्रयत्नशील रहना ही मानव का धर्म है, साधना है।

सदागम का स्वरूप

(श्रुतज्ञानः शुद्ध वस्तुस्वरूप बतानेवाला ज्ञान)

परमार्थ से देखा जाय तो यह महात्मा ही तीनो जगत के स्वामी है, वास्तव मे सब पर स्नेह रखनेवाले, जगत के शरण, सर्व प्राणियो के बधु, विपत्ति ग्रसितो के आधार, संसार अटवी मे भूले हुओ के सत्य मार्गदर्शक त्यागियो को औपधि देनेवाले वैद्य, रोगो के नाशक उत्तम औपधि, सर्व वस्तुओ को प्रकाशित करनेवाले दीपक, प्रमाद रूपी राक्षस से मुक्त करानेवाले महात्मा, अविरति रूप मैल को धो डालनेवाले महापुरुप, मन, वचन, काया के दुष्ट योगो को मिटाने मे उद्यमकारी शब्दादि पाच धर्म धन लूटनेवाले डाकूओ के पजे से छुडाने वाले महात्मा यही हैं। घोर भयंकर नर्क के दुखो से बचाने वाले और वहां गये हुओ का उद्धार करनेवाले, प्राणियो को तिर्यच गति के दुखो से बचानेवाले, अधम मनुष्य जन्म गति के दुखो के विच्छेद करनेवाले, अधम असुर योनि मे होने वाले संतापो को दूर करनेवाले यही महात्मा हैं। अज्ञान वृक्ष को नाश करनेवाले, कुठार निद्रा भग कर प्राणियो को जागृत करनेवाले, तथा स्वभाविक आनन्द के वास्तविक कारण यही महात्मा है। सुख दुख के अनुभव से होनेवाली मिथ्यामति का नाश करनेवाले यही महात्मा है। क्रोधाग्नि को बुझाने के लिये जल समान, 'महामान' रूप पर्वत को काटने के लिये वज्र समान, महामाया रूपी बाघिन का

का नाश करने को शरभ (पक्षी) समान, और महालोभ रूप मेघ को हटाने के लिये पवन समान यही महात्मा है। यह महापुरुष हास्य के विकार को ठडा करने मे महाशक्तिवान और मोहनीय कर्म के उदय से होनेवाली रति का नाशकरने वाले और अरति की पीडा मिटाने के लिये अमृत समान हैं। भय पीडित व्यक्ति की रक्षा मे शक्तिवान, शोक पीडित को आश्वासन देनेवाले, जुगुप्सा की पीडा को शान्त करनेवाले हैं। काल पिशाच को भी लात मार भगानेवाले और मिथ्यात्व रूपी अधकार को भगानेवाले प्रचड प्रतापवाले सूर्य है। यह चारो प्रकार की आयु (देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारकी) का विच्छेद करनेवाले है क्योकि वे जहा जन्म मरण न हो उस शिवालय मे ले जाते है। अच्छी या बुरी नाम कर्म की प्रकृतियो द्वारा प्राणी को संसार मे अनेक प्रकार की पीडाएँ होती है, उसे यह महात्मा अशरीर स्थान पर पहुचा कर पीडा रहित कर देते है। अपने भक्त जनो को अव्याबाध सर्वोत्तम पद प्राप्त कराकर ऊच नीच गोत्रो मे जन्म से होती पीडा को यह महात्मा नाश करते है। यही महात्मा दान, लाभ आदि अनेक शक्तियो के दाता है और यही महात्मा, महावीर्य (शक्ति) को प्राप्त कराने का कारण भूत हैं। जो अधम और भाग्यहीन पुरुष, वह पापी है, उसे इस सदागम महात्मा के नाम के लिये बहुत मान नही होता, ऐसे प्राणियो पर सब मुसीबते कर्म परिणाम राजा करता है, उसके पास ससार नाटक कराता है। पर जिन प्राणियो का कल्याण निकट भविष्य मे होनेवाला है ऐसे पुण्यशाली उत्तम पुरुष, बहुत आदर पूर्वक सदागम महात्मा की आज्ञाओ का

पालन करते हैं। और इससे वे अनेक पीडा देनेवाले कर्म परिणाम राजा की किंचित भी परवाह नही करते और उसका अपमान कर कर भी निर्वृत्त नगरी मे चले जाते हैं। वहां जाकर वे मौज करते है आनन्द मनाते है। यदि वे कभी कर्म परिणाम राजा के आधीन प्रदेश मे रहते हैं तो भी, चिन्ता-रहित होकर सदागम की कृपा से कर्म परिणाम राजा को तिनके के बराबर तुच्छ समझ कर उसकी कुछ भी परवाह नही करते है। ससार मे या कही भी कोई ऐसी सुन्दर वस्तु नही जो इस सदागम भक्त को प्राप्त न हो सके। इस महात्मा के गुणो का वर्णन करना किसी के लिये भी सभव नही है।

संसार का अंतरंग प्रदेश

"बोध" की आज्ञा से "प्रभाव" ससार भ्रमण को निकला। वह अपने अनुभव इस प्रकार बताता है।

बाह्य प्रदेश मे भ्रमण से उद्देश-पूर्ती न होने पर मैं अतरग प्रदेश मे गया। वह नगर लुटेरो असभ्य लोगो की वस्ती दिखती थी। चारो ओर काम इत्यादि चोर, बदमाश भरे थे। वह बस्ती पापी लोगो का निवास स्थान, मिथ्याभिमान की खान, अकल्याण परपरा की जड थी, वहा चारो ओर अधकार दृष्टिगोचर होता था जिसमे प्रकाश की एक किरण तक नही दिखती थी। इस राजस-चित्त नगर के राजा का नाम रागकेशरी था। यह उत्पाती लोगो का सरदार, पापी प्रवृत्तियो का कारण, सन्मार्ग रूप पर्वतो के लिये वज्र समान, इन्द्र जैसो से भी दुर्जय और अतुल्य बल और पराक्रम का स्वामी था।

इस रागकेशरी राजा के एक विषयाभिलाष नामक योद्धा था। यही राजा के सब कार्यो का विचार करता था। सब जगह इसकी आज्ञा सर्व मान्य थी। वह समस्त ससार को अपने वश मे करने मे बहुत कुशल था। प्राणियो को मोह मे डाल देने का उसे वहुत अभ्यास था। कोई भी कार्य पाप अनीति द्वारा करना हो तो बहुत चालाकी से कर देने मे वह वहुत कुशल था। उसे अपने काम के लिये किसी के उपदेश की आवश्यकता नही थी, इसलिये राजा ने समस्त राज्य भार उसी पर ही डाल रखा था।

मैं जव इस राजस-चित्त नगर के बीच चौंक मे पहुचा तो देखा कि वहा वडा कोलाहल हो रहा था। साथ ही मिथ्या अभिनिवेश इत्यादि अनेक रथ वाहर निकलते देखे। उस रथ के आगे अनेक भाट विरुदावली द्वारा उनका महात्म्य वढा चढा कर गा रहे थे। उन रथो मे लोलुप्ता-गृद्धि आदि अनेक राजा बैठे हुये थे। आगे चलने पर देखा कि अपने गर्जन से चारो ओर शोर मचाते हुये ममत्वादि हाथी राज मार्ग पर चले जा रहे थे। दूसरी ओर अपने हिनहनाट से चारो दिशाओ को गुजाते हुये अशानादि घोडे जा रहे थे, और उनके पीछे रण योद्धाओ की तरह अकड कर चलनेवाले चपल्यादि सशस्त्र पैदल सैनिक जा रहे थे। उसी समय ढोल वाजो की ध्वनि मे कामदेव जा रहे थे, और चारो और ध्वजाएं लहरा रही थी, शंख ध्वनि हो रही थी, और प्रेम के नखरे हो रहे थे।

उसी समय विषयाभिलाष मत्री का विपाक नामक सबधी मुझे मिला। वह पुरुष बड़ा कठोर, अपने स्वरूप से

ससार की विचित्रता बनानेवाला, अज्ञानियो को बोध देने वाला, विवेकियो मे वैराग्य उत्पन्न करनेवाला था। मैने उसे राजा के प्रयाण करने का कारण पूछा। उसने उत्तर दिया कि एक समय इस रागकेशरी राजा ने अपने मत्री विषयाभिलाष को कहा कि ऐसा कार्य करना चाहिये जिससे सारा जगत हमारे वश मे हो जाय। मत्री ने स्पर्शनादि पाच निजी सेवको को अपने पास बुलाया। यह पहले भी अपना पराक्रम बतला चुके थे। वे मनुष्यो के हृदयो को अपनी तरफ आकर्षित करने मे बहुत कुशल थे, चचल प्रकृति वालो को बड़ी उत्तेजना देनेवाले थे, और बडी कठिनता से वश मे आने वाले थे। उन्हे विषयाभिलाप योद्धा ने जगत को वश करने के लिये भेज दिया।

पर उसी समय उनका विरोध करनेवाला, उनके कार्यो मे बाधक चोर उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सतोष था। उसने कई लोगो को रागकेशरी राजा के अधिकार से निकाल कर "निवृत्ति" (मोक्ष) नामक नगरी मे पहुँचा दिया।

जब राजा रागकेशरी को इसका पता लगा तो वे बहुत क्रोधित हुये, और निजी लोगो को आज्ञा देने लगे कि तुरन्त सेना तैयार करो और शत्रु पर आक्रमण करने को प्रयाण करो।

प्रयाण की आज्ञा देकर जब रागकेशरी राजा रथ पर सवार होने लगा, तब उसे विचार आया कि उसने अपने पिता महामोह से तो इस युद्ध के विषय मे बात ही नही की। वह तुरन्त पिता के पास गया और उसने उन्हे सब परिस्थिति

से अवगत किया। महामोह राजा, सब सुनकर स्वय भी साथ हो गया। इस प्रकार महामोह नरेन्द्र रागकेसरी राजा, विषयाभिलाप मत्री और अन्य सामंत और सैनिक सन्तोष नामक चोर को पकड कर कारागृह मे डालने के लिये निकले। राजस चित नगर मे भारी कोलाहल मच गया।

महामोह महाराजा

रागकेशरी का पिता महामोह राजा विख्यात है। यह तीन जगत को लीला मात्र मे चक्कर मे डाल देता है। बड़े-बडे चक्रवर्ती राजा इसके सेवक बन कर रहते है। प्राणी अन्य किसी की भी आज्ञा का उलघन कर सकता है पर इस महाराजा की आज्ञा का कोई उलघन नही कर सकता है। यह द्वेषादि रूप मे सर्व लोक व्यापक है। परमार्थ समझने वाले और सतोष से प्राप्त वास्तविक सुख को जाननेवाले प्राणी भी इसी महामोह के कारण इन्द्रियो के सुखो मे फस जाते है। सर्व-शास्त्रो के जानकार पडित लोग भी इसके प्रभाव से विषययासक्त हो जाते है। महामोह के शासन के कारण श्री जिनेन्द्र भगवान के बताये हुये तत्वो को जानने वाले प्राणी भी कषायो के वश मे फस जाते है। सुन्दर मनुष्य जन्म और जैन शासन जैसा सुन्दर शासन पाकर भी प्राणी गृहस्थ मे आसक्त होकर ससार भ्रमण मे इसी महाराजा के कारण गिर जाते है। यह महामोह, यति, भाव मे रहते हुये साधुओ को भी हैरान करता है। यह मनुष्य लोक मे, पाताल और स्वर्ग मे सब जगह आनन्द मे विलास करता है। इसी के प्रभाव से प्राणी गाढे विश्वास रखनेवाले मित्र को भी

ठगाते नही चूकते है। कुलीन स्त्रियाँ इसी के प्रभाव मे आकर अपने पूर्ण विश्वास और प्रेम रखनेवाले पति को भी छोड़ कर पर पुरुप पर आसक्त हो जाती हैं। इसी प्रकार कितने ही पुरुष कुल की मर्यादा त्याग कर पर-स्त्री गमन करते हैं। गुरु द्वारा गुण प्राप्त किये हुये शिष्य भी, इसी कारण गुरु से द्रोह करते हैं। आर्य कुलीन पुरुष, इसी के वहकाव से चोरी और ऐसे ही अनेक कार्य करने मे आनन्द मनाते है। इसका समस्त संसार मे वडा भारी प्रभाव है। वह ससार को चकित कर देनेवाले अद्भुत कार्यो द्वारा महान् प्रसिद्धि प्राप्त किये हुये है।

जिस प्रकार वृक्ष के पत्ते समय आने पर पीले पड जाते हैं और पृथ्वी पर झर पडते हैं, उसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी आयु के समाप्त होने पर क्षीण हो जाता है। अतएव हे गौतम! क्षण भर के लिये भी प्रमाद मत कर।

भोग तृष्णा

जिस प्रकार रात्रि चारो तरफ अंधकार फैला देती है, उसी प्रकार भोग तृष्णा, राग द्वेष इत्यादि दूषणो के समूह को चारो ओर फैला देती है। यह महा नीच कार्य करने वाली और अयोग्य आचरण करनेवाली होने के कारण जिनके शरीर मे प्रवेश कर जाती है, उसमे एकदम नही करने योग्य कार्यो के करने की वुद्धि उत्पन्न कर देती है। जिस प्रकार कितना ही घास डालो अग्नि कभी शान्त नही होती और कितना ही जल डालो पर समुद्र तृप्त नही होता, उसी प्रकार कितने ही भोग भोगे जावे पर भोग तृष्णा शान्त नही होती। इस प्रकार जो मनुष्य मोह के वश मे होकर भोग तृष्णा को अपनी प्रिय स्त्री वना लेता है, वह महा-भयंकर और अन्त विना के समुद्र मे भटकता फिरता है, और जो उत्तम पुरुप इस भोग तृष्णा को दोषपूर्ण स्त्री मान कर उसे अपने शरीर रूपी घर से वाहर निकाल देता है और उसके प्रति अपने मन के द्वार वन्द कर लेता है, वह सव प्रकार के उपद्रवो से मुक्ति पाकर अपने सव पापो को धोकर अपनी आत्मा को निर्मल, मैल रहित वना कर परम पद की प्राप्ति कर लेता है। जो सत पुरुप, सज्जन पुरुष, इस भोग तृष्णा रहित होते हैं वे स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोक मे सव प्राणियो की वदना योग्य होते है। ओर जो प्राणी भोग

तृष्णा के वश मे पड कर उसी के अनुकूल आचरण करते है, उनको यह स्त्री अपनी प्रकृति के अनुसार बहुत दुख देती है। और जो उत्तम मनुष्य इस स्त्री के प्रतिकूल आचरण करते है उन्हे स्वभाव से ही यह स्त्री सुख समूह देती है। जब तक प्राणी के मन मे भोग तृष्णा रहती है तब तक प्राणी मोक्ष पर द्वेष करता है और ससार को बहु प्रिय मानता है। जिस समय पुण्य शाली प्राणी की किसी भी प्रकार से भोग तृष्णा नाश हो जाती है, दूर हो जाती है, उसी समय उस प्राणी को ससार धुए की तरह नि स्सार लगने लगता है।

जिन महात्मा पुरुषो के शरीर मे से भोग तृष्णा निकल जाती है, वे चाहे स्थूल धन बिना वाले हो, ससार उन्हे निर्धन ही कहे, पर वे धीर वीर पुरुष इन्द्रो के भी इन्द्र है, क्योकि भोग तृष्णा से मुक्त हुये पश्चात् उन्हे किसी की अपेक्षा नही रहती।

भोग तृष्णा से मुक्ति का उपाय

साहस के साथ अधिकाधिक सम्बन्ध रखकर अपने सम्यग् दर्शन को अधिकाधिक जागृत करते रहना, इस भोग तृष्णा के अनुकूल, बने वहा तक कोई काम न करना, इस से सम्बन्ध होने पर मन मे किस प्रकार के विकार उत्पन्न होते है, उन्हे अच्छी तरह समझना और इस प्रकार के विकारो का प्रसग आने पर तुरन्त उनसे विपरीत भावनाए सदा मन मे रखकर उन विकारो के विरोध मे खडा हो जाना। इस प्रकार बार बार करते रहने से भोग तृष्णा यदि

शरीर मे रहेगी तो भी शक्तिहीन होती जायगी और तुमको न तो हैरान कर सकेगी और न अन्य प्रकार से त्रास उत्पन्न कर सकेगी और भवातर मे इसी प्रकार भोग तृष्णा को पूर्ण रीति से त्याग करने मे सफल हो जाओगे।

अज्ञान स्वरूप

अज्ञान ही सब दोषो का कारण है। यह जहां तक शरीर मे है तब तक प्राणी करने योग्य और न करने योग्य कार्यो मे भेद नही कर सकता। क्या खाने योग्य पीने योग्य है और क्या नही है वह समझता नही है। और जिस प्रकार एक चक्षु हीन पुरुष चलता चलता कुए मे गिर पडता है उसी प्रकार वह भी कुमार्ग मे पड़ जाता है। वह कठोर कर्म बाधता है, और पर-भव मे भी ससार अटवी मे अनेक प्रकार के दु.ख पाता हुआ भटकता रहता है। राग द्वेष को उत्तेजन करनेवाला और भोग तृष्णा को प्रज्वलित करनेवाला यही अज्ञान है। ससार मे सब दुखो का कारण यही अज्ञान है। जिन भाग्य-वान प्राणियो के चित्त मे से अज्ञान निकल जाता है, उनकी अन्तरात्मा परम शुद्ध हो जाती है, उनकी प्रवृत्तिया सदा सदाचार पूर्ण रहती है और ऐसे प्राणी जिनके मन अत्यन्त शुद्ध हो जाते हैं वे तीनो भवन के वदन करने योग्य होकर सर्व पाप रूप पक से मुक्त होकर अन्त मे परम पद-मोक्ष प्राप्त करते है।

यह अज्ञान ही पाप को जन्म देता है, इसलिये पाप ही सर्व दुखो का कारण है। यह प्राणियो मे भयकर उद्वेग उत्पन्न करता है। ससार के सब दुखो का कारण यह अज्ञान का पुत्र पाप ही है। इसलिये कोई ऐसा कार्य जिससे पाप

उत्पन्न हो, विवेकी पुरुष को नही करना चाहिये । पाप की उत्पत्ति के कारण है हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, परिग्रह शुद्धतत्व ज्ञान के प्रति अश्रद्धा, क्रोध, मान, माया, लोभ ! मोक्ष के इच्छुक को इन कारणो से केवल दूर ही नही रहना चाहिये पर इनके प्रसंग से भी दूर रहने का प्रयास करते रहना चाहिये । अज्ञान ही के कारण यह सब दुष्कृत्य पाप होते है ।

आर्जव स्वरूप

आर्जव प्राणियो के आशय को अत्यत शुद्ध करनेवाला होने के कारण उससे बढते हुये पापों मे रुकावट आ जाती है । जिन भाग्यशाली प्राणियो के चित्त मे आर्जव होता है, वे कदाचित अज्ञान से पापाचरण करे तो भी वे बहुत थोड़ा पाप कर्म का बधन करते है, क्योकि आर्जव पाप बढ़ने नही देता । ऐसे प्राणी जब शुद्ध मार्ग जान जाते है तब कर्मो को नष्ट कर मोक्ष मार्ग पर प्रवृत्ति करते हैं और इस प्रकार शुभ मनवाले भाग्यशाली प्राणी जीवन पर्यन्त निर्मल आचार का पालन करते हुये संसार को पार कर जाते है ।

धर्माचरण कर्तव्य

समझदार विद्वान मनुष्य को विचारना चाहिये कि इस संसार मे विशुद्ध धर्म ही एक विशेष आदरणीय वस्तु है क्योकि धर्म के बिना अन्य जो कुछ है वे सब दुख के कारण है । अपने निजी लोगो का सम्बध अनित्य है, तथा ईर्ष्या और शोक से भरपूर है । युवावस्था अस्थिर-चपल है और

बुरे आचरणो का निवास स्थान है। जो सम्पत्ति अनेक क्लेशो से प्राप्त होती है वह भी अनित्य है। जन्म के पीछे मृत्यु लगी हुई है, और फिर जन्म और मृत्यु बार बार और कई बार अधम स्थानो मे होते रहते है। इस जगत मे यदि कोई वस्तु आधार रखनेवाली है तो वह कलक रहित सारे ससार से वदनीय धर्म है क्योकि उसीके द्वारा उत्कृष्ट अर्थ की साधना होती है।

विपरीत मार्ग

विपरीत मार्ग द्वारा कभी किसी की कार्य सिद्धि नही होती है। सुख प्राप्ति के लिये आर्य पुरुष को, न करने योग्य कार्य करने का सकल्प करना ही विपरीत मार्ग है। ऐसा सकल्प करने से धीरज का नाश होता है, विवेक लुप्त हो जाता है, चित्त मलीन हो जाता है, और लम्बे समय पहले भी जो पाप कार्य करे हो उनके फलो को उदय मे लाकर प्राणी को सर्व अनर्थो के मार्ग पर लाकर पटक देता है। इस प्रकार ऐसे कार्यो मे सुख की गध भी कहा से आ सकती है।

ऐसे मनुष्यो पर तो दुख ही दुख आते है और इस भार से ही उनका पीछा नही छूटता, पर ससार भी उन पर आक्रोश कर वैरी का काम साधता है। ऐसे प्राणी एक ओर तो दुखो से पीड़ित होते हैं, और दूसरी ओर लोक निन्दा के भाजन होते है। इस प्रकार उनके दुखो पर डाम लगता है।

सुख का साधन भूत धर्म

इस ससार मे प्राणी को जितना भी हो प्रयास कर सर्वज्ञ महाराज का बताया हुआ धर्माचरण करना चाहिये, क्योंकि धर्म से ही द्रव्य मिलता है, मन की सब कामनाएँ पूर्ण होती है और अन्त मे संसार से मुक्ति भी प्राप्त होती है। इस प्रकार धर्म सब पुरुषार्थो का साधन होने के कारण खास आदर के योग्य वस्तु है। यह धर्म अनन्त सुख से भरपूर मोक्ष मे भी प्राणी को ले जाता है और प्राणी ससार मे है तब तक भी प्रसगवशात् उसे सुख की प्राप्ति कराता है।

सुख प्राप्ति की इच्छा तो जल्दी हो जाती है पर उसके साधन जल्दी से नही होते, क्योंकि जो अपनी पांचो इन्द्रियो को जीत लेता है, वश मे कर लेता है वही धर्म का साधन, पालन कर सकता है। परन्तु ये इन्द्रिया अनादि काल से भव चक्र मे परिभ्रमण करते करते बहुत बलवान हो गई हैं, इसलिये सामान्य बुद्धिवाला प्राणी इन्हे साधारण रीति से विजय कर सके ऐसा सभव नही है। इस प्रकार होने के कारण प्राणी मात्र सुख प्राप्त करने की इच्छा तो करता है, पर उसे प्राप्त करानेवाले धर्म को नही आदरता है, और धर्म से दूर भागता है।

चार प्रकार के पुरुष

इस ससार मे चार प्रकार के पुरुष होते है। (१) जघन्य (२) मध्यम (३) उत्कृष्ट या उत्तम और (४) उत्कृष्टतम या उत्तमोत्तम।

उत्तमोत्तम–अनादि काल से प्राणी का इन्द्रियो के साथ सम्बध चलता आया है। प्रत्येक भव मे प्राणी इन्द्रियो का लालन पालन करता आया है और इसलिये वे उसे बहुत प्रिय हो गई है। उत्तमोत्तम प्राणी जब सर्वज्ञ महाराज के बताये हुये विशुद्ध आगमो के आधार पर समझने लगता है, कि इन्द्रिया बहुत पापो का स्थान है, और अनेक दोषो को उत्पन्न करने वाली है, इतना जानने पर आगे विचार करने पर उसे पता लगता है कि महापुरुषो ने इन्द्रियो को तिरस्कार की दृष्टि से देखा है, इतना जानते ही मन मे सतोष लाकर, स्वय गृहस्थ अवस्था मे हो तो भी, वास्तविकता को पहचान कर इन्द्रियो की लोलुपता मे पड़कर किसी भी प्रकार का अनुपयुक्त आचरण नही करता है। आगे चलकर ऐसे प्राणी को जब जिनागम का अधिक बोध होता है और वह मन मे स्थिरता प्राप्त करता है, इन्द्रियो के साथ स्वय का, जो भी थोडा सबध है उसे त्याग देता है, और भगवती दीक्षा लेकर मनको अत्यन्त निर्मल कर सतोष भाव धारण कर एकदम स्पृहा, इच्छा बिहिन हो जाता है। ऐसी दशा मे इन्द्रिय भोग की तरफ उसकी किंचित भी इच्छा नही रहती है। वह इन्द्रियो से सुख मिले इस प्रकार की कोई इच्छा नही रखता और क्लेशो से भी किसी प्रकार आकुल व्याकुल नही होता। इस प्रकार सब कर्मो द्वारा मिलनेवाले क्लेशो का नाश कर, इन्द्रियो पर पूर्ण विजयी होकर, अन्त मे निवृत्ति नगरी (मोक्ष) मे चला जाता है, जहा उसे किसी भी प्रकार का

क्लेश नही रहता है। ऐसे उत्मोत्तम वर्ग के प्राणी इस जगत मे बहुत थोडे ही होते है।

उत्कृष्ट अर्थात उत्तम पुरुष मनुष्य जन्म प्राप्त कर जो प्राणी इन्द्रियों को शत्रु के रूप मे देखता है, उसे उत्तम पुरुप समझना चाहिये। ऐसे पुरुपो का भविष्य उत्तम होने के कारण इनके मन मे यह निर्णय हो जाता है कि इन्द्रियाँ प्राणी को किंचित भी लाभकारी नही है। वे समझने लगते है कि इन्द्रिया तो प्राणी को केवल धोखा देनेवाली है। ऐसा जान लेने के पश्चात वे सदा उनसे सावधान रहते हैं, उन पर विश्वास नही करते। केवल इतना ही नही किन्तु अपनी इच्छाओ पर नियत्रण रखते हैं, जिससे ऐसा कोई कार्य न हो जाय जो इन्द्रियों को अधिक उत्तेजित करे। ऐसे पुरुप कभी अकार्य, दूपित कार्य नही करते। वे मानते हैं कि शरीर, धर्म करने का साधन है, इसलिये उसे कायम रखना है, पर उसमे उन्हे आसक्ति नही होने के कारण उनके द्वारा वे हैरान नही होते। इतना ही नही किन्तु इस प्रकार, वे सुख के भाजन बनते है। ऐसे मनुष्यो की ससार मे कीर्ति होती है, उनके व्यवहार की चारो ओर प्रशसा होती है, उनका मन बहुत पवित्र और निर्मल होता है। इससे परभव मे भी स्वर्ग और मोक्ष के सुख निकट आते जाते है। ऐसे पुरुप केवल स्वय ही मोक्ष मार्ग की ओर प्रयाण नही करते है, किन्तु दूसरो को भी प्रेरणा देते है और उस मार्ग पर अग्रसर करते

है। ऐसे महानपुरुष स्वभाव से ही देव पूजन, गुरु को बहुमान, तपस्वियो की वय्यावच, सेवा और अन्य व्यवहारवाले महापुरुषों की पूजा सत्कार मे लगे रहते है, और उन्हे ऐसे कार्यो मे आनन्द आता है।

मध्यम पुरुष—जो प्राणी मनुष्य जन्म प्राप्त करके, इद्रियो के स्वरूप को मध्यम बुद्धि, साधारण दृष्टि से देखते है वे मध्यम पुरुप है। ऐसे प्राणी इन्द्रियो के भोग मे आसक्त हो जाते है, पर जब कोई विद्वान उन्हे इन्द्रियो का स्वभाव कैसा है, यह बतलाता है और उनके भोग मे फसने के क्या परिणाम होते है यह बतलाता है तब उनका मन डोलायमान हो जाता है, उनके मन मे प्रश्न होता है कि इस विचित्र ससार मे क्या किया जाय। एक ओर देखते है कि लोग इन्द्रीय भोगो की प्रशसा करते है और बहुत लोग उन्हे आनन्द पूर्वक सेवन करते है। और कई शान्त प्रकृति के लोग इनकी मूर्छा त्याग कर, इन भोगो की निन्दा करते है। ऐसी उलझन पूर्वक स्थिति मे क्या किया जाय। ऐसे ऐसे विचार कर, वे सन्देह मे गिर जाते है और कुछ भी निर्णय नही कर सकते। इसी स्थिति मे समय बीतता जाता है और फिर देखा जायगा इस प्रकार विचार करते है। ऐसी स्थिति मे वे इन्द्रियो को सुख का साधन तो मानते है और उनके अनुकूल आचरण भी करते है, पर उनमे आसक्त होकर अन्धे नही हो जाते है। इन्द्रियो के वश होकर वे कोई लोक विरुद्ध आचरण नही

करते । इससे उन पर कोई भारी दुख नही आ गिरते । उन्हे जो बुद्धिमान पुरुष शिक्षा और उपदेश देते हैं उसे वे अच्छी तरह से सुनते है और उन पर ध्यान देते हैं। पर उन्हे इन्द्रियो के भोगो के कारण स्वय दुख सहने का अनुभव नही होने के कारण, उन विचक्षण पुरुषो के उपदेशो के अनुसार आचरण नही करते है। इसके विपरीत वे मूर्ख मित्रो के चक्कर और स्नेह मे पड़कर कई बार ऐसे कार्य कर बैठते हैं जिनके भयकर परिणाम होते हैं। ऐसे मित्रो के कारण उनकी ससार मे निन्दा होती है क्योकि पापी मनुष्यो की सगत सब तरह से अनिष्टकारी है । फिर जब विद्वान पुरुष उसे शिक्षा देते हैं तब वह समझने लगता है कि उसका वास्तविक हित किसमे है और तब वह तदनुसार आचरण करने लगता है । इस प्रकार उनका अज्ञान मिट जाता है और वे वास्तविक सुख प्राप्त करने लगते है और महात्मा पुरुषो के सम्बन्ध से उन्हे उत्तम मार्ग प्राप्त होता है और वह भी गुरु महाराज और त्यागी तपस्वियो की पूजा बहुमान पूर्वक करते हैं ।

जघन्य मनुष्य जो मनुष्य इन्द्रियो को अपना प्रिय मित्र समझता है, न कि बडे से बड़ा दुश्मन और उसके हित की बात कहनेवाले पर उलटा क्रोध करता है वह जघन्य पुरुष है । इन्द्रीय भोग इनके खुजली के समान है, जो पहले तो खुजलाने पर अच्छी लगती है पर अन्त मे जलन पैदा करती है, पर वह अपने आपको नही रोक सकता । इसी प्रकार

इन्द्रिय भोग पर एक वार आसक्ति लगे पीछे प्राणी को भविष्य का विचार नही रहता, परन्तु वह ऐसा समझने लगता है कि इन्द्रियो मे ही उसका स्वर्ग है, परमार्थ है और सुख सागर है। इस प्रकार उसके हृदय मे चारो ओर अधकार फैल जाता है। वह मार्ग भ्रष्ट हो जाता है। उसके हृदय मे सद्भावना आ ही नही सकती और उन विचारो से उसकी वुद्धि भी अधी हो जाती है। अन्त मे उसकी स्थिति इतनी विगड जाती है कि वह ऐसे कार्य करता है जो धर्म और लोक विरुद्ध होते हैं और लोक उसकी निन्दा करने लगता है। यदि कोई उसको हित की वात कहे कि भविष्य मे ऐसे मार्ग पर न चले तो ऐसे लोगो का वह दुश्मन वन जाता है। ऐसा पुरुष अपने कुल मे कलक लगाता है, और लोगो की हंसी का पात्र वन जाता है। इस ससार मे इस प्रकार की जघन्य प्रकृति के मनुष्य वहुत होते हैं और अन्य तीन प्रकृति के वहुत कम होते हैं।

□□

नोट—ऊपर के उद्धरणो मे हमने सव इन्द्रियो के विषय मे जिक्र किया है यद्यपि मूल पुस्तक मे केवल स्पर्श इन्द्रिय का ही जिक्र है क्योकि सव ही इन्द्रिय भोगो के एकसी वातें लागू होती है।

मुनि के लक्षण

मुनि जीवन पर्यन्त अन्य प्राणियो को किंचित मात्र पीडा नही पहुँचाते हैं। एक थोडी सी भी असत्य नही बोलते, एक दात कुरेदनी तक पराई वस्तु विना दिये नही लेते। नवगुप्ति युक्त ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, धर्म के उपकरणो तथा निज के शरीर तक पर ममता नही रखते। रात मे चारो तरह के आहार का सर्वथा त्याग करते है। दिन मे भी सब प्रकार के दोषो विना, शास्त्रो मे बताये हुए सयम यात्रा सुचारु रूप से चले, इस उद्देश्य से ही शुद्ध आहार स्वीकार करते है। निजी आचरण पाच समिति और तीन गुप्ति युक्त रखते हैं। अनेक प्रकार के अभिग्रह लेकर वीरता से आगे बढते जाते है। अकल्याण मित्र से किंचित भी सम्बन्ध नही रखते। सज्जन पुरुषो की ओर जैसे वे स्वय ही हो ऐसा मीठा भाव रखते है। स्वय के योग्य स्थिति आचरण हो उसका उलंघन नही करते। लोक मार्ग—व्यवहार की अपेक्षा सदा ध्यान रखते हैं। गुरु महाराज तथा अन्य बड़ो का पूरा मान रखते है। उनकी आज्ञानुसार चलते है। भगवान के आगम अच्छी तरह श्रवण करते है। बड़े यत्नपूर्वक व्रतो की भावना भाते हैं। लोक मे, व्यवहार मे कैसी भी आपत्ति आवे, धीरज धारण करते है। भविष्य मे निज पर किसी भी प्रकार का दुख आता देखे तो पहले से ही उस पर विचार कर उपाय जहाँ तक हो सके करके रखते हैं। अपने अनुकूल संयोग मे बहुत सावधानी रखते हैं उनमे लुब्ध नही हो जाते।

अपना चित्त प्रवाह किस ओर जाता है इसका पूरा लक्ष्य पूर्वक ध्यान रखते है। मन की गति किधर ही जाय इसके प्रतिरोध के उपाय की पहले से तैयारी रखते है। असगपणे का अभ्यास जागृत रखकर मन को सदा निर्मल रखते है। योग मार्ग का अभ्यास करते है। परमात्मा को अपने चित्त मे स्थापित करते हैं, उस पर अपने चित्त की सदा धारणा बनाये रखते है। बाहरी कोई भी विषय उन्हे विक्षेप करे, ऐसा कभी होने नही देते। अपने अन्त करण को परमात्मा पर एक तान लगे इस प्रकार उसकी प्रेरणा करते है। योग की सिद्धिया प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं शुक्ल ध्यान आदरते हैं। स्वय की आत्मा और शरीर तथा इन्द्रिया एकदम अलग वस्तु है इसे वे प्रत्यक्ष देखते है। उत्कृष्ट प्रकार की समाधि प्राप्त करते है। अपना जीवन इतना विशुद्ध कर लेते हैं और इतनी उत्कृष्ट प्रकार की मानसिक निर्मलता की साधना करते हैं कि शरीर मे रहते हुए भी मोक्ष के सुख प्राप्त करने के स्वयं योग्य हैं ऐसा स्पष्ट प्रतीत होने लगता है।

धर्म की प्राप्ति

यह ससार अनादि काल से ऐसा ही चला आता है। यह लोक प्रवाह से अनादि है और जीव भी अनादि काल से है। इन प्राणियों को अनादि काल की रखडपट्टी मे कोई भी समय सर्वज्ञ के बताये हुए धर्म की प्राप्ति नही होती इसलिये वे बिचारे ससार मे भटकते ही रहते हैं और इस भटकने का कभी अन्त नही आता। यदि उनको कभी भी धर्म की

प्राप्ति हुई होती, तो फिर संसार की रखडपट्टी मे वे क्यो पड़े रहते। अग्नि के सग मे तिनका कैसे रह सकता है। इसलिए निश्चय ही है कि जीवन मे पहले कभी तीर्थंकर महाराज का बताया हुआ धर्म स्वीकार नही किया। और इस बात मे तनिक भी शका की गुजाइश नही। जिस प्रकार समुद्र मे मछलियां फिरती रहती है उसी तरह इस अनादि ससार समुद्र मे जो दु खो से भरा है, यहां से वहा मछलियो की तरह भटकते रहते है। और इस तरह भटकते भटकते जब स्वकर्म और भव्यत्व परिपक्व होता है, मनुष्य-भवादि सामग्री मिलती है, समय की अनुकूलता हो जाती है तब महाकल्याणकारी अचिन्त्य शक्तिवाले प्रभु की कृपा होती है। इस सब के परिणाम स्वरूप बडी कठिनाई से काटी जाय ऐसी ग्रंथी-गाठ (कर्मो की गाठ) को काटकर सर्व क्लेशो का नाश करनेवाले भगवान के बताये हुये तत्त्व के, प्राणी को दर्शन होते है अर्थात् सम्यग् दर्शन होता है। इसके पश्चात् प्राणी तीर्थंकर महाराज के बताये हुए सर्व दु खो का नाश करनेवाला गृहस्थ धर्म अथवा साधु धर्म स्वीकार करता है। इस प्रकार की सामग्री मिलनी प्राणी के लिए बहुत दुष्कर है। इसीलिए बारबार यह कहा जाता है कि जिस प्रकार राधावेध की साधना बहुत कठिन है उसी प्रकार धर्म का प्राप्त होना बहुत कठिन कार्य है। अब जो तुम को शुद्ध धर्म की प्राप्ति हुई है तो उसे पालन करने मे बन सके उतना उद्यम करो और जितने अग मे धर्म की प्राप्ति नही हुई हो उस अंग को प्राप्त करने के लिये प्रयास करो।

प्राणियों का उत्क्रान्ति क्रम

ससार मे रहे हुए सर्व प्राणियो के सम्बन्ध मे प्राय ऐसा ही हाल होता है जैसा कि आगे कहा जाता है। सर्व प्राणी प्राय: अनादि काल से असव्यवहारिक राशि मे रहते है। प्राणी जब वहा रहते है तब क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि आश्रव द्वार उनके अंतरग सगे सबधी होते हैं। विशुद्ध जैन आगम ग्रथो मे बताये हुए अनुष्ठान द्वारा विशुद्ध मार्ग पर आकर जितने प्राणी कर्म से मुक्ति (मोक्ष) पाते है और सिद्ध हो जाते हैं, उतने ही प्राणी इस असव्यवहार जीव राशि मे से बाहर निकल कर व्यवहार राशि मे आते हैं, ऐसा केवल ज्ञान द्वारा सर्व वस्तुओ को देखनेवालो का वचन है। इस असव्यवहार राशि मे से निकल कर जीव एकेन्द्रिय जाति मे अनेक प्रकार की विडम्बना पाता हुआ हेरान गति भोगता है। फिर विकलेन्द्रिय (दो, तीन, चार इन्द्रियवाले) गतियो मे नाना प्रकार के नाटक करता है, पाच इन्द्रियोवाली त्रियच जाति मे परिभ्रमण करता है, वहा अनेक प्रकार के दु खो को सहन करता है। भिन्न भिन्न भवो मे भुगतने योग्य बध हुए कर्मो के जाल मे फसा हुआ जीव भवितव्यता के चक्कर से नये नये रूप धारण करता है। कुए के रेट (अरट) की तरह ऊपर नीचे चक्कर लगाता रहता है। सूक्ष्म, बादर, पर्याप्ता और अपर्याप्ता अनेक रूप मे जन्म लेता है, और वह कभी पृथ्वी (काय) का रूप लेता है, और कभी पानी (अपकाय) का, किसी समय अग्नि (काय) का रूप लेता है, तो कभी वायु (काय) का, किसी समय वनस्पति का शरीर

धारण करता है, कभी बेइन्द्रिय, कभी तेइन्द्रिय और कभी चउइन्द्रिय का शरीर धारण करता है। कई वार असंज्ञी-पचेन्द्रिय तिर्यंच और कई वार संज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंच रूप मे जन्म लेता है। त्रियच पंचेन्द्रियो मे भी कभी जलचर (पानी मे रहनेवाले) प्राणी और कभी थलचर (पृथ्वी पर चलने वाले) प्राणी का रूप लेता है और कभी नभचर पक्षी का रूप लेता है। इस प्रकार अनेकानेक रूप धारण करता हुआ प्रत्येक रूप मे अनन्त वार भटकता है। इस प्रकार अनेक जगह विचित्र रूपो मे भटकता भटकता, जैसे किसी महासमुद्र मे गिरे हुए को कदाचित रत्नद्वीप मिल जाय, महारोग से जर्जरित होने पर कोई रामवाण औपधि मिल जाय, विप से मूर्छित होने पर किसी मत्र जाननेवाले के द्वारा स्वस्थ हो जाय, अथवा दारिद्रय मे घवराये हुए व्यक्ति को अचानक चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति हो जाय, उसी प्रकार वडी मुश्किल से मिलनेवाला मनुष्य-भव प्राप्त होता है। पर वहा भी जैसे धन के भारी भडार पर कोई वेताल (राक्षस) आकर बैठ जाय, उसी प्रकार मनुष्य भव मे हिंसा, क्रोध इत्यादि वेताल इस प्राणी को कई प्रकार हैरान करते है और इसी से महामोह निद्रा मे पडकर प्राणी वहुत हैरान होकर अपना जन्म-हार जाता है। इतना ही नही किन्तु विकास क्रम मे ऊँची कक्षा मे पहुँचे हुए व्यक्ति जिन्होने तीर्थंकर भगवान के वताये हुये भव प्रपच को अच्छी तरह समझ लिया है, जिनके हृदय मन्दिर मे जिन वचन रूप का प्रकाश भी है, जिससे वे यह अच्छी तरह समझते है कि मनुष्य भव पाना कितना कठिन है, जो यह अच्छी तरह

जानते है कि इस संसार सागर से तारनेवाला केवल धर्म ही है और जो सम्यग् दर्शन प्राप्त होने के कारण भगवान के उपदेशो का सच्चा अर्थ अपने अनुभव से जानते है, और जिन्होने अपने हृदय मे यह स्पष्ट निर्णय कर लिया है कि परम आनन्द का स्थान केवल सिद्ध दशा है, ऐसे उच्च श्रेणी के पुरुष भी छोटे बालक की तरह दूसरो को कष्ट देने लगते है, अभिमान से फूल जाते है, अन्य प्राणियो को तग करने लगते हैं, पैसा पैदा करने का अवसर आता है तो प्रसन्न हो जाते हैं, अनेक प्राणियो को मारना पडे, ऐसे धन्धे करते है, असत्य बोलते है, पराया पैसा हजम कर जाते हैं, इन्द्रियो के विषयो को भोगने मे आसक्त हो जाते है, बहुत धन सग्रह करते है, रात्रि भोजन करते हैं, सुन्दर शब्द सुनने मे मोहित हो जाते है, सुन्दर रूप देखने मे अधे हो जाते है, स्वादिष्ट भोजन खाने मे आसक्त हो जाते है, सुगधित वस्तुओ की सुगध मे ललचा जाते है, सुन्दर स्पर्शकारी वस्तुओ या प्राणियो का प्रेम से आलिगन करते है। पर स्वय को पसन्द न आनेवाले शब्द, रूप, रस, गध या स्पर्शवाली वस्तुओ या प्राणियो से द्वेष करते है, उनके प्रति तिरस्कार दृष्टि से देखते है, उनके प्रति घृणा करते है, अपने अन्त करण को पाप स्थानो मे घुमाते हैं। भाषा पर किसी प्रकार का अकुश न रखते हुए मन मे आता है वैसे बोलते है, शरीर को एकदम उद्धत बना लेते है, और तपस्या आदि से दूर भागते है। यह मनुष्य-भव प्राणी को मोक्ष दिलाने मे प्रबल कारण भूत होने पर भी प्राणी ऊपर लिखे अनुसार आचरण करता है, ऐसे भाग्यहीन प्राणियो को मनुष्य जन्म किसी भी तरह

लाभकारी नही। इसके विपरीत अनन्त दु.ख परम्परा से भरपूर संसार भ्रमण वढ़ानेवाला हो जाता है। ऐसा दुर्लभ मनुष्य भव ऐसे प्राणियोको हितकर होने के वदले महान् अहितकर हो जाता है। ऐसे प्राणी ने ससार की रखडपट्टी मे भटकते कई वार मनुष्य भव प्राप्त किया है परन्तु उन भवों मे शुद्ध धर्म का आराधन न करने के कारण जीवन उद्देश्य सिद्ध नही किया। इसी कारण यह सिद्ध है कि भगवान के वताये हुये धर्म की प्राप्ति कितनी दुष्कर है।

तीन कुटुम्ब

प्रत्येक प्राणी के तीन कुटुम्व होते हैं। पहले कुटुम्व में क्षान्ति (क्षमा) मार्दव (मान का त्याग) आर्जव (माया का त्याग-सरलता) मुक्ति (लोभ का त्याग) ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुख, सत्य, शौच (वाह्य और अभ्यतर पवित्रता), तप, और सतोप, इत्यादि कुटुम्वी-जन होते हैं। दूसरे कुटुम्व मे क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेप, मोह, अज्ञान, शोक, भय, अविरति (व्रत नियमो का अभाव) इत्यादि कुटुम्वी होते हैं। तथा यह शरीर, उसे उत्पन्न करनेवाले स्त्री पुरुष (माता पिता) और अन्य उसी प्रकार के लोग, भाई वहिन सम्वन्धी इत्यादि, यह तीसरा कुटुम्व है। इन तीन कुटुम्वो द्वारा प्रत्येक प्राणी के असख्य सगे सम्वन्धी होते है।

इनमे जो क्षान्ति, मार्दव आर्जव इत्यादि प्रथम कुटुम्व कहा गया है, वह प्राणी का स्वभाविक कुटुम्व है, अनादि काल से उसके साथ रहा हुआ है, उनका कभी साथ नही छूटता, उसका कभी सर्वथा नाश नही होता, वे कुटुम्वी जन

सदा प्राणी का हित करने मे तत्पर रहते है । वे भी अदृश्य हो जाते हैं और कभी प्रगट हो जाते है। इनका ऐसा ही स्वभाव है। वे अतरग मे रहते है, और वे इतने शक्तिशाली है कि प्राणी को मोक्ष तक मे पहुँचा देते है। इसका कारण यह है कि उनकी प्रकृति ही ऐसी है कि वे प्राणी का उत्थान करते है।

दूसरा प्राणियों का क्रोध, मान इत्यादि कुटुम्ब बतलाया गया, वह एकदम अस्वाभाविक है, पर दुर्भाग्य वश, बात यह हो जानी है कि वास्तविकता नही जाननेवाला प्राणी उनको, स्वाभाविक कुटुम्ब हो, ऐसा मान कर उन पर बहुत प्रेम रखता है। यह दूसरी प्रकार का कुटुम्ब-क्रोध, मान, राग, द्वेषादि, का अभव्य (मोक्ष के अयोग्य) प्राणियो के साथ सम्बन्ध सदा अनादि से है और उनसे सम्बन्ध सदा काल रहता है कभी छूटता नही है अनन्त है। कितने ही भव्य (मोक्ष के योग्य) प्राणियो के साथ इनका सम्बन्ध अनादि तो है पर, उनका सम्बन्ध छूट सके जैसा है। यह कुटुम्ब विना अपवाद, प्राणी का एकान्त अनिष्ट करनेवाला है। ये कुटुम्बीजन भी प्रथम कुटुम्ब की तरह कभी अदृश्य और कभी प्रकट हो जाते है, और अतरग मे रहते है। प्राणी की बने उतनी ससार की रखडपट्टी की वृद्धि करना उस कुटुम्ब का धर्म है, प्राणी को उठाकर नीचे पटकना उसका स्वभाव है।

जो ऊपर तीसरा कुटुम्ब कहा गया है वह तो अस्वाभाविक है यह प्रगट ही है। वह तो थोडे समय पहले उत्पन्न होता है और थोड़े समय पश्चात् विनाश प्राप्त करता है। इसलिए

उसका सम्बन्ध एकदम अस्थिर है। वह किसी प्रकार भी स्थाई नही हो सकता। भव्य (मोक्ष के योग्य) प्राणियो का कई वार यह कुटुम्ब हित भी करता है और कई वार अहित भी। इनका उत्पत्ति और विनाश धर्म है। और यह बहिरग प्रदेश मे ही विद्यमान होते है। भव्य प्राणी के ससार भ्रमण अथवा मोक्ष के वे कारण होते है और अभव्य प्राणी के केवल ससार भ्रमण के। अधिक कर के यह कुटुम्ब क्रोध, मान इत्यादि प्राय. दूसरे कुटुम्ब के पोषक ही होते है और इसलिए ससार वृद्धि के कारण हो जाते है। पर कदाचित कोई भाग्यशाली प्राणी क्षान्ति, मार्दव आदि प्रथम कुटुम्ब के अनुसार जीवन-यापन करता है तो तीसरा बाह्य कुटुम्ब मोक्ष का कारण भी हो सकता है।

प्रश्न होता है कि प्राणी ऐसे हितैषी प्रथम कुटुम्ब का आदर क्यो नही करता और अहित करनेवाले का पोषण अधिक क्यो करता है। इसका कारण यह है कि क्षमा शाति इत्यादि प्रथम कुटुम्ब और क्रोध रागादि द्वितीय कुटुम्ब मे अनादि काल से वैर चला आता है। दोनो ही अतरग मनोराज्य के वासी है। पर अधिकतर दूसरे अधम कुटुम्ब से पहला उत्तम कुटुम्ब हारा हुआ ही है। इस प्रकार अनादि ससार मे दूसरा कुटुम्ब अधिक बलवान है और प्रथम कुटुम्ब दबी हुई स्थिति मे रहता है। इस कारण प्रथम कुटुम्ब इतना छिपकर रहता है कि भय के मारे वह प्राणी को अपना दर्शन भी नही करा सकता है, इसलिए प्राणी को उसका स्पष्ट दर्शन नही होता। इस प्रकार इस अद्भुत अतरग कुटुम्ब के दर्शन भी नही होने के कारण प्राणी यह

नही जानता कि उसमे क्या क्या और कितने गुण है। इस कारण से प्राणी के मन मे उसके प्रति आदर भाव नही होता। ऐसा कुटुम्ब उसके अतरग राज्य मे वसता है तो भी प्राणी ऐसा ही जानता है कि वह वहा वसता ही नही है। वात यहा तक पहुँच जाती है कि यदि कोई महान् आत्मा उस अतरग प्रदेश में रहे हुए विशुद्ध कुटुम्ब के गुणो का वर्णन भी करे तो भी उसको कोई गिनती नही। साथ मे ही ऐसा होता है कि दूसरी प्रकार का अधम कुटुम्ब प्रथम प्रकार के विशुद्ध को अनादि ससार मे मार भगा कर उस पर विजय पताका फहराता है, और परिणाम स्वरूप स्वय का शासन और वलवान कर के प्राणी पर अपना अधिकार मजबूत कर लेता है तथा प्रत्यक्ष प्रकट होकर उसका स्वामी बन जाता है। इससे प्राणी को इस दूसरे अधम प्राणो के प्रतिदिन दर्शन होते रहते हैं। इस प्रकार रोज साथ रहने के कारण प्राणी का उसके साथ प्रेम सम्बन्ध बढता जाता है। उसे देख कर प्राणी को सन्तोप और आनन्द होने लगता है, उस पर वहुत विश्वास उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार क्रोध और राग द्वेष समूहवाले दूसरे अधम कुटुम्ब पर प्राणी की निरन्तर आसक्ति बढती जाती है जिसके परिणाम स्वरूप इसमे जो अनेक दोष है वे, वह प्राणी नही देख सकता है और जो उनमे गुण नही हैं, उनका प्रेम के कारण उनमे झूठा आरोपन करता है। इस प्रकार इस खोटे प्रेम के परिणाम स्वरूप वह इस अधम द्वितीय कुटुम्ब का अधिकाधिक पोषण करता रहता है। वह अन्त करण से मानने लगता है कि यह अधम कुटुम्ब ही उसका सच्चा मित्र है और उस

पर प्रेम पूर्वक बन्धु बुद्धि प्रगट करता है। यदि कोई महान् आत्मा उसके सामने उस कुटुम्ब के दोष बतलाता है तो उसको अपना दुश्मन गिनने लगता है।

जो प्राणी अपना सर्वथा कल्याण करना चाहता है उसे अवश्य पहले और दूसरे कुटुम्बो के गुण दोषो का विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। हम (मुनि, साधु) लोग प्राणी को धर्म कथा सुनाने और धर्मोपदेश देने मे यह ही ध्येय सामने रखते है। भिन्न भिन्न उपदेश प्रणाली से, प्राणी दोनो अन्तरग कुटुम्बो को पहचाने, यही समझाना हमारे जैसे उपदेशको का उद्देश्य है। बात यह है कि जब तक प्राणी मे पूरी योग्यता नही आती है तब तक वह इन दोनो कुटुम्बो मे क्या अन्तर है वह नही समझ सकता और जो प्राणी अयोग्य है इनके सम्बन्ध मे हम उपेक्षा ही धारण कर लेते है। और यदि सब ही प्राणी इन अन्तरंग मे रहे हुये दोनो कुटुम्बो के गुण दोष जान सके ऐसी योग्यता रखते होते तो यह ससार की रखडपट्टी जड से ही समाप्त हो जाती क्योकि दोनो कुटुम्बो के गुण दोष जान जाने पर प्राणी दूसरे कुटुम्ब का तिरस्कार करके सब प्राणी मोक्ष मे ही चले जाते।

यह भी ध्यान मे रखने की बात है कि अकेला ज्ञान ही कार्य सिद्धि के लिये पर्याप्त नही है। उसके सिवाय अन्य दो बाते भी आवश्यक है। वे हैं श्रद्धान (आस्था) और अनुष्ठान (क्रिया, व्यवहार, चारित्र)। जो ऊपर कहा गया वह सत्य है ऐसा विश्वास तो श्रद्धान है इस ज्ञान के विषय को व्यवहार मे लाना आवश्यक है, ऐसा करने से सर्व

मनोवाछित फल अवश्य सिद्ध होते है, इसमे सन्देह का कोई स्थान नही। पर यह भी ध्यान मे रखने की बात है कि ऐसा करने मे बहुत निर्दयता वर्तनी होती है।

साधु मुनियो को भी दूसरे अधम कुटुम्ब से अनादि काल से स्नेह सम्बध लगा हुआ होता है। पर उसकी अधमता समझने के पश्चात् वे अत्यन्त भयकर रूप धारण करके, पहले इस अधम कुटुम्ब की प्रथम विशुद्ध कुटुम्ब के साथ रात दिन युद्ध, लड़ाई कराते है। और दोनो के बीच मे महा सहार कराते हैं। इस दूसरे कुटुम्ब की जो महामोह नाम का पितामह है, जिसके कारण इस कुटुम्ब का जन्म हुआ है और ये प्रगट हुआ है, उसको यह साधु लोग ज्ञान की सहायता से हनन करते है और इसी से उन्हे निर्दयी कहा गया है। इस अधम कुटुम्ब का सब शासन चलानेवाला, महा बलवान 'राग' नाम का सरदार है, उसका ये साधु लोग 'वैराग्य' नाम के अस्त्र से नाश करते हैं। इस 'राग' के साथ जन्मा हुआ जो 'द्वेष' नामक भाई है उसका 'मैत्री' नामक तीर से दूर से ही हनन कर देते है। इस अधम कुटुम्ब मे रहनेवाले 'द्वेष गजेन्द्र' के पुत्र 'क्रोध' को ये निर्दयी साधु 'क्षमा' नामक करोत से मार डालते है तब क्रोध रोने चिल्लाने लगता है। द्वेष गजेन्द्र के 'मान' नाम से दूसरे पुत्र को 'मार्दव' (नम्रता, मान, त्याग) नाम की खड्ग से मार कर ये निर्दयी साधु अपने हाथ तक नही धोते। उसकी 'माया' नाम की एक छोकरी है, उसको यह साधु 'आर्जव' (सरलता) नाम की लकडी से खूब पीटते है। 'लोभ' नामक उसके एक भाई को 'मुक्ति'

(निर्लोभता, लोभ, त्याग) नाम की कुल्हाडी से ऐसा हनन करते हैं कि उसके टुकडे टुकडे हो जाते है। ये दया हीन मुनि, सब प्रकार के स्नेह प्रेम कराने मे तत्पर 'काम' (स्पर्शेन्द्रिय विषय) को तो दोनो हाथो के बीच मे लेकर एक पक्षी की भाति मसोस देते है । वे अत्यन्त प्रज्वलित 'सद्ध्यान' नामक अग्नि द्वारा सर्व 'शोक' सम्बन्ध को भस्म कर देते है । उसी कुटुम्ब के 'भय' नामक मनुष्य को, निर्दयी रूप 'धैर्य' नामक बाण से दूर से ही विच्छेद कर देते हैं। इस कुटुम्ब मे और 'हास्य' 'रति' और 'जुगुप्सा' नामक कुटुम्बी भी बसते है, और इसी प्रकार 'अरति' नामक एक सम्बधिनी भी रहती है। इन सबको ये साधु महा निर्दयी होकर विवेक पूर्वक भिन्न भिन्न उपायो और शस्त्र अस्त्र द्वारा मार भगाते है। वहा पाच 'इन्द्रियो' नामक भाई बधु रहते है, उनके ये साधु 'सतोष' नामक मुग्दर द्वारा टुकडे टुकडे कर डालते है । इसी प्रकार अतरग अधम कुटुम्ब के अन्य रिश्तेदार सम्बधी इत्यादि है उन प्रत्येक को ढूढ ढूढ कर योग्य शस्त्र धारण कर निर्दयता पूर्वक और धरती पर पछाड पछाड कर उनका अंत करते है। इस प्रकार ये साधु एक ओर तो इस अधम कुटुम्ब के व्यक्तियो को समाप्त करते है और साथ साथ प्रथम विशुद्ध कुटुम्ब के प्रेमालु सम्बधियो की शक्ति और बल मे वृद्धि करते है। इस प्रकार प्रथम कुटुम्ब बलवान होने से और दूसरे कुटुम्ब के व्यक्ति हिम्मत हार कर शक्ति हीन हो जाने के कारण उन साधुओ पर दूसरे कुटुम्ब का शासन नही चल सकता है। इन साधुओ को विशेष छानबीन करने से पता लगता है, कि

तीसरा बाह्य कुटुम्ब भी दूसरे अतरग अधम कुटुम्ब को सहायता देनेवाला है, इसलिये वे इस तीसरे कुटुम्ब (ससारी मां, बाप, स्त्री, पुत्र, भाई, बहिन इत्यादि) का सर्वथा त्याग कर देते है। जब तक बाह्य तीसरे कुटुम्ब का सर्वथा त्याग नही किया जाता है तब तक अंतरग दूसरे अधम कुटुम्ब पर पूर्ण विजय प्राप्त नही हो सकती। इसलिये जिसकी प्रबल इच्छा ससार त्याग की है उसे ऊपर बताया हुआ अत्यन्त निर्दय काम करना होगा। पर इसमे एक बात ध्यान मे रखने की है, कि बिना किसी एक पक्ष को ओर झुके केवल मध्यस्थभाव से, जो निर्दय कार्य करने को ऊपर कहा गया है, उसे करने की शक्ति है या नही इसका पहले पूरा विचार करलेना चाहिये। जो निर्दय कार्य दूसरे अतरग अधम कुटुम्ब को वीर्यहीन बनाने को बताये गये है वे कितने अश मे तो घातकी साधु निजी अभ्यास के बल पर करते हैं। इसके विपरीत दयालु लोग ससार मे आनन्द माननेवाले होते हैं, उनसे ऐसे कार्यों का विचार तक नही किया जा सकता है तब आचरण तो दूर रहा। वे इस प्रकार के कार्य कदापि व्यवहार रूप मे नही कर सकते हैं।

इस प्रकार तीसरे बाह्य कुटुम्ब के त्याग की, दूसरे अंतरग अधम कुटुम्ब के नाश और पहले अतरग विशुद्ध कुटुम्ब को पोषण करने की बात कही गई है यह ध्यान मे रखने और श्रद्धा करने की बात है। इसका ज्ञान प्राप्त कर इस पर श्रद्धा लाकर इसके अनुसार अपने पराक्रम का उपयोग कर अनेक महात्मा मुनिगण संसार प्रपच से मुक्त हो गये हैं, उनके सब विरोधी भाव दूर हो गये है और वे अपने

स्वभाविक रूप मे आकर आनन्द कर रहे हैं। यह मार्ग कठिन अवश्य है पर इसके परिणाम बहुत सुन्दर होते हैं।

एक और बात ध्यान मे रखने योग्य है कि जो प्राणी दूसरे अधम कुटुम्ब को हटाये बिना ही तीसरे ससारी बाह्य कुटुम्ब का त्याग करता है वह केवल आत्मविडम्बना ही करता है। तीसरे कुटुम्ब का त्याग कर आकुलता व्याकुलता छोडकर जो प्राणी दूसरे अधम कुटुम्ब को भी मार हटाता है, उसका ही तीसरे कुटुम्ब का त्याग सफल माना जाता है, यदि ऐसा न हो तो वह त्याग निष्फल और निकम्मा है।

धर्मोपदेश

कथानक मे एक महान आचार्य विचक्षणसूरि के पास नरवाहन राजा जाता है। उनके दर्शन से प्रभावित होकर अल्पायु मे ही वैराग्य लेने का कारण पूछता है तब वे उपदेश देते है

एक बड़े विशाल महल के अन्दर के भाग मे जब आग लग जाती है, उस समय आग से घिरनेवाले मनुष्यो की जैसी भयकर स्थिति होती है वैसा यह ससार है। यह शारीरिक और मानसिक इत्यादि अनेक दुखो का घर है। बुद्धिमान पुरुषो को यहां एक क्षण के लिये भी प्रमाद करना उचित नही। अल्प मात्र प्रमाद के भी महा भयकर परिणाम होते हैं। यहा मुख्यतया परलोक का साधन कर लेना विशेष कर्तव्य है इस ससार मे जो जो विषय भोगने में आते हैं, वे भोगते समय तो मीठे लगते है, पर उन सबके परिणाम तो कटु होते है। मनोवाछित जितने भी संयोग

होते है अन्त मे उन सब का वियोग होता है। आयुष्य पूर्ण होने का हरदम भय रहता है, पर वह कब पूर्ण होगी यह कोई नही जान सकता। ऐसी स्थिति सदा बनी रहती है। ऐसी स्थिति मे इस अग्निमय ससार को पार करने के लिये बहुत प्रयत्न करने तथा उसके उपाय सोचने की सदा जरूरत रहती है। ऐसा करने के लिये सिद्धांत-तत्वज्ञान की, वासना युक्त धर्म की वर्षा करना मुख्य साधन है। इसलिये सिद्धात की वासना (प्रभाव) आवश्यक होने के कारण, सिद्धात-आगमो को बराबर स्वीकार करना चाहिये। उनमे जो जो आज्ञाएँ दी गई है उन सब का बराबर पालन करना चाहिये। संसार को मिट्टी के घडो की उपमा दी गई है। अर्थात् यह उन्ही की तरह सारहीन अस्थाई है यह भावना सदा मन मे रखना चाहिये। जो वस्तु सदा रहने की नही है, उस पर किसी प्रकार का आधार (अपेक्षा) रखना उचित नही। जो जो आज्ञाएँ (सिद्धात) है उनका विशेष प्रकार से पालन करने मे सदा तत्पर रहना चाहिये, उनमे विशेष एकाग्रता रखना चाहिये तथा साधु महात्माओ की सेवा द्वारा उन विचारो की पुष्टी करनी चाहिये। प्रवचन शासन, की किसी प्रकार अवहेलना न हो, अकारण निन्दा न हो इसकी सावधानी रखना चाहिये। जो प्राणी, बताई हुई विधि के अनुसार प्रवृत्ति करते है उनको ऊपर बताई हुई बातें मिल सकती है। इसलिये सब बातो मे शास्त्रो में बताई हुई विधि के अनुसार कार्य करना चाहिये। इस प्रकार प्रवृत्ति कर कर सूत्र सिद्धान्तो मे जो आत्मा का स्वरूप बताया है उसे बराबर समझना चाहिये। प्रवृत्ति करते समय जो आस पास की परिस्थितिया, निमित्त और

प्रसग हो उन्हे बराबर पहचान कर-समझ कर उनके अनुकूल होकर व्यवहार करना चाहिये। जो जो योग प्राप्त नही हो सके हो, उनको प्राप्त करने की विशेष चेष्टा करना चाहिये। प्रमाद से विशेष प्रकार से सावधान रहना चाहिये। प्रमाद होने के अवसर आवे उससे पहले ही बहुत सावधान होकर पहले से ही उसके विरुद्ध उपायो की योजना कर रखनी चाहिये। ऐसा करने से सोपक्रम कर्म अर्थात् जिन कर्मो से छुटकारा हो सकता है, ऐसे कर्म छूट जाते हैं और इनके विपरीत निरुपक्रम कर्मो (कठिन अकाट्य) का बधन नही होता, तुम्हे भी ऐसे यत्न करना चाहिये यह तुम्हारी भावी प्रगति के लिये बहुत आवश्यक है।

अन्तरंग ससार के दृश्य

उपमिति मे एक रूपक मे मनुष्य की कुप्रवृत्तियो सुप्रवृत्तियो और निवृत्ति का बडा सुन्दर वर्णन किया है। हम इस जगह मामा विमर्श और भाजे प्रकर्श जो भव अटवी ससार की यात्रा पर निकले हैं उनकी यात्रा तथा उनकी बातचीत का वर्णन करते है।

महामोह का साम्राज्य

दोनो मामा भांजे, बहिरग देश को छोड कर अन्तरग देश मे पहुँचे और राजस-चित्तपुर नगर मे पहुचे। उस सूने नगर के अधिकारी मिथ्याभिमान से पता चला कि नगर के सूने रहने का कारण यह है कि 'विषयाभिलाष' ने अपने 'स्पर्शन-रसनादि' पाँच स्नेहियो को जगत को वश मे करने के लिये भेजा था, उनका 'सन्तोष' के साथ सघर्ष हो गया, उसको

पराजित करने के लिये राग, द्वेष, मोह-आदि सब सेना सहित अनन्त काल से उसके साथ युद्ध मे जुटे हुये है, इसलिये यह नगर सूना है। मुझे नगर की रक्षा के लिये वापिस लौटा दिया है।

मामा भाजे आगे चले और तामसचित्त नगर पहुचे। वहा उनकी दैन्य आक्रन्दन, रोदन आदि से प्रवृत्त 'शोक' नामक अधिकारी से भेंट हुई और पता चला कि वहा का राजा महामोह का दूसरा लडका द्वेष गजेन्द्र भी 'सन्तोष' का वध करने को युद्ध मे गया है। उसने अपनी गर्भवती पत्नी अविवेकता को रोद्रचित्तपुर नगर मे दुष्टाभिसधि राजा के पास भेज दिया था। वहां उसके पुत्र जन्म हुआ। वह भी नवजात पुत्र सहित अपने पति से मिलने बहिरग नगर गई है।

आगे चलते चलते मामा भाजे चित्तवृत्ति नामक अटवी मे पहुँचे। वहा उन्होने एक नदी के बीच टापू पर एक महा मडप देखा जिसमे अनेक सुभटो से घिरा हुआ महामोह नामक राजा वेदिका सिहासन पर बैठा था। मामा ने भाजे को बताया कि सब सुख दुखो की हेतु मूल यह चित्तवृत्ति नामक नगरी है। तथा निद्रा रूपी तट, कषाय रूपी जल, विकथा रूपी प्रवाहवाली ससार समुद्र मे गिरनेवाली यह प्रमत्तता (प्रमाद) नामक नदी है उसके बीच मे हास्य विलासादि हस, सारस आदि से भरे हुये तद्विलिखित नाम का टापू है। महामोहाविष्ट लोगो को विभ्रम और सन्ताप देने वाला चित्त विक्षेप नाम का वह मडप है। उस मडप मे

भुवन भ्रमण हेतुरूप तृष्णा नाम की वेदिका रखी हुई है। महामोह के आश्रित यह विपर्यास नामक सिंहासन है। महा-मोह ने अपने तेज से तीनो लोक जीत लिये है।

सिंहासन पर बैठे महामोह राजा के बाये उनकी रानी महामूढता बैठी है जिसके पास ही कृष्ण वर्ण व्यक्ति, उनका सर्वाधिकारी मत्री मिथ्यादर्शन है। यही बाह्य लोक मे कुदेव, कुगुरु और कुधर्म को सुदेव सुगुरु और सुधर्म समझने की बुद्धि देता है। उसकी बगल मे ही उसकी भार्या कुदृष्टि बैठी है जो लोगो मे पाखड प्रचार कराती है। राजा के दक्षिण पार्श्व में उनका ज्येष्ठ पुत्र राग केसरी बैठा है। जिसके पीछे रक्त वर्ण के उसके तीन मित्र दृष्टि राग, स्नेह राग और काम राग हैं और जो स्त्री बैठी है वह राग केसरी की समगुण भार्या मूढ़ता है। राजा के बांये ओर उसका कनिष्ठ पुत्र द्वेष गजेन्द्र और उसकी पत्नी अविवेकता बैठे है। ज्येष्ठ पुत्र के चारो ओर माया और लोभ नाम के आठ पुत्र और कनिष्ठ पुत्र को घेरे हुये क्रोध और मान नामक आठ पुत्र बैठे हुए है।

महामोह राजा के पीछे हाथ मे काम धनुष लिये पुवेद स्त्रीवेद, और नपुसकवेद इन तीन अनुचरो सहित, रक्त वर्ण-वाला व्यक्ति मकरध्वज अर्थात् कंदर्प नामक माडलिक है जिसके पास उसकी भार्या रति बैठी है। इस कदर्प के पास पाच स्त्रियो सहित पुरुष बैठे है उनके नाम है हास्य और उसकी स्त्री तुच्छता, अरति नामक स्त्री, भय और उसकी स्त्री आत्महीनता भाव, शोक और जुगुप्सा। वेदिका के पास

स्पर्शनादि का जनक और राग केसरी राजा के मत्री विषयाभिलाष और उसकी पत्नी भोग तृष्णा है और इनके पास इनका सुभट दुष्टाभिसन्धि बैठा है। यही सब राजा का अन्तरग सैन्य है।

जो अन्य सात व्यक्ति राजा के पास है वे उसके मित्र (१) ज्ञान सवरण (२) दर्शनसवरण (३) वेदनीय (४) आयुष्य (५) नाम (६) गोत्र और (७) अन्तराय है। ये सातो अपने-अपने परिवारो सहित बैठे हैं। ये सातो ही मोहराजा के घनिष्ट मित्र हैं और उनकी आज्ञा मे रहकर संसार मे जीवो को अनेक प्रकार के फल दिखाते रहते हैं।

आगे चलते हुये मामा ने कहा कि महामोह का बड़ा भाई कर्म परिणाम है। उसने अपने छोटे भाई को चित्तवृत्ति अटवी और राजसचित्त आदि दे दिए हैं। यहा यह मोहराज सब को फसाता है और भाति भाति के नाटक खेल कराता रहता है।

भाजे के प्रश्न पर कि क्या इन महामोहादि को कोई भी जीतनेवाला नही है? क्या इसका सतोप नामक विपक्षी नही है? मामा ने कहा कि वह सतोष नामक व्यक्ति ही इसका विपक्षी है और वह भवचक्र नगर में रहता है और वाह्य और अन्तरग दोनो ही प्रकार के नगरो का आधारभूत है। अब दोनो मामा और भाजा भवचक्र नगर की ओर सतोष का पता लगाने बढे।

चलते चलते वे भवचक्र नगर पहुचे। वहा मानवावास के ललितपुर नगर के उद्यान मे पहुँचे। वहा देखते हैं कि

काल परिणिति के अनुचर तन्नियोग के कारण वसत ऋतु अपने मित्र कामदेव सहित पहुँचा हुआ है और मोहादि ने मिलकर उसका वहां राज्याभिषेक किया है। इसलिये चारो तरफ वसत खूब उत्साह के साथ फूट निकली है और उसकी शोभा देखने को असख्य जन समूह आ रहा है। ललितपुर का राजा लोलाक्ष भी हाथी पर सपरिवार आया है। वह सपरिवार मद्य पीता है और सब गा बजा और नाच रहे हैं। वहा छोटे भाई रिपुकम्पन की भार्या रति ललिता भी अपने पति के आदेश से नाच रही थी। उसे नाचते देख कर लोलाक्ष राजा कामान्ध होकर उसे पकड़ने दौड़ा। बचाव के लिये जब रति ललिता जोर से चिल्लाने लगी तो उसका पति रिपुकम्पन नशे मे से जागृत हुआ और लपक कर तलवार द्वारा लोलाक्ष को मार गिराया।

मामा भाजे आगे राजकुल मे पहुँचे तो देखते है कि राजा रिपुकम्पन अपने भाई की अकस्मात मृत्यु से राज्य लाभ और दूसरी भार्या मतिकलिता के उसी समय पुत्रोत्पत्ति, के हर्ष में मत्त हुआ खूब नाच रहा है और मिथ्याभिमान के वशीभूत लोगो को भी उत्सव मनाने नाचने गाने को कह रहा है। उसी समय दो पुरुष मतिमोह और शोक प्रवेश करते हैं, उधर नवजात बालक अकस्मात मर जाता है और ये दोनो पुरुष उस राजा, और रानी के शरीर मे व्याप्त हो जाते है और दोनो ही, पुत्र, मैं तो मर गई कह कर बेसुध होकर धरती पर गिर जाते है।

आगे क्या देखते हैं कि एक धन कुबेर मिथ्याभिमान और धन के गर्व मे दूसरे व्यापारियो को हीन दृष्टि से देख रहा है कि इतने मे वह राग केसरी के पुत्र लोभ से प्रभावित होकर चोरा हुआ राजमुकुट एक चोर से खरीद लेता है। थोडी ही देर में राजपुरुष आकर उसे पकड लेते हैं और उसको डडे लगाते है। इस पर मामा कहता है कि चचल और अस्थिर धन पर लोभ के मारे यह इतना अभिमानी और अधा हो गया था कि न्याय और नीति को भी उसने तिलाजली दे दी। और उसी के यह परिणाम भोग रहा है। धन न्याय से ही उपार्जित करना और उसे शुभ कार्य में लगाना चाहिये।

आगे देखते हैं कि एक दुर्बल भिखारी मिठाई और फूलो के हार खरीद रहा है। यह एक धनिक युवक रमण था। पर वेश्याओ के चक्कर मे उसने सब धन खो दिया, पर फिर भी उस व्यसन मे इतना फसा हुआ है कि निर्धन दशा मे भी कुछ पैसा मिल गया तो उसे भी उस वेश्या के लिये फूलो के हार और मिठाई में व्यय कर रहा है। वह वहां जाता है और वेश्या से भेट करता है। इतने मे ही वेश्या का अन्य प्रेमी राजकुमार चड पहुंच जाता है और वह उस युवक रमण को खूब पिटवा कर भगा देता है।

आगे चलने पर उन्होने एक बिखरे केश, भूख से बैठा पेट और फटी आखोवाला नगा पुरुष देखा। वह भी एक धन कुबेर का पुत्र था। जिसने जुए मे सब कुछ खोकर अपना

सिर भी दाव मे लगा दिया। जब हार गया तो लोग उसका सर तोड़ने जा रहे है।

आगे देखा तो एक राजा जो शिकार के पीछे इतना पागल हो गया कि अपना राजकाज भी नही देखता, उसको उसके मत्री मार भगाते हैं और उसके पुत्र को राज्य दे देते है। वह राजा भागता हुआ गिर जाता है और उसका बुरा हाल होता है। इसी प्रकार आगे झूठी गप्पो आदि विकथा करनेवालो की, निर्दयो मासाहारियो इत्यादि की दुर्गति होते देखी।

आगे देखते हैं कि एक जगह मित्र के विदेश से धन कमा कर आने से हर्ष—उल्लास मनाया जा रहा है कि थोडी ही देर मे पुत्र मरण के समाचार से शोक के बादल छा गये हैं। इस तरह भिन्न भिन्न प्रकार के नाटको को देखकर भानजे को कौतुक हुआ तब मामा ने कहा कि इस भवचक्र नगर मे प्रधान चार पुरी हैं मानवावास, विबुधावास, पशुवास और पापीपजरवास। मानवावास मे हर्ष, विषाद, धन गर्व, मिथ्याभिमान, शोक, वैर, कलह, विषयाभिलाष, काम, मतिमोह आदि महामोह के सुभट सदा ही रहते हैं इसलिये यह सब नाटक यहां होते रहते हैं। विबुधावास मे भी मोह के सुभट ईर्षादि की कदर्थन के कारण दु.ख से छुटकारा नही है। पशुवास मे तो भूख, प्यास, बन्धन, ताडन आदि सदा चलते ही रहते हैं।। वहा सुख की बात ही कहां। पापीपजर वास को तो महामोह राजा ने सदा के लिये असाता वेदनीय

(दु.खकारक) सुभट को ही सौप दिया है। इसलिये वहां के निवासी केवल दु.ख के ही भागी है।

आगे उन्होने सात अत्यन्त कृष्णावर्णी रौद्ररूपा स्त्रियो को देखा जिनके लिये मामा ने बताया कि यह जरा, रुचा, मृत्यु, खलता, कुरूपता, दरिद्रता और दुर्भगता है। कालपरिणिती रानी द्वारा नियुक्त यह जरा यौवन मदोन्मतो को भी क्षीण बलहीन करने को घर घर घूमती है। रुचा लोगो को रोगी बनाने को नियुक्त है, मृत्यु आयुष्य के आदेश से लोगो को मार देती है, समय आने पर इस के चगुल से कोई नही बचता है। कर्म परिणाम राजा के सेनापति पापोदय के आदेश से खलता, चारो ओर पैशून्य, मित्रद्रोह फैलाती है और पुण्योदय से उत्पन्न सौजन्य को भी पराजित कर देती है। 'नाम' भूपति रूष्ट होता है तब कुरूपता लोगो को काणा, खोडा, लंगड़ा आदि अनेक कुरूप देती है और सब रूपता को भी नष्ट कर देती है। अतराय के आदेश से पापोदय द्वारा दरिद्रता आती है और पुण्योदय जनित ऐश्वर्य को भी नष्ट कर देती है। दुर्भगता, महाराज के आदेश से पहुच कर लज्जा, विनयशीलता और इनसे उत्पन्न सज्जनता का नाश कर देती है। ये सातो राक्षसणिया भवचक्रपुर मे लोगो को तरह तरह से पीड़ित करती रहती हैं और अनन्तानन्द प्राप्त नही होने देती।

मोहादि की सामर्थ्य जानने के पश्चात् भाजे ने मामा से मिथ्यादर्शन का महात्म्य पूछा। इस पर मामा ने कहा कि भव के प्रायः सब प्राणी ही इसके प्रभाव के कारण

परमानन्द हेतू भूत निवृत्तिपुरी है, ऐसा सुनकर भी सही मार्ग पर नही चलते। मिथ्यादर्शन की आज्ञा से दिग्मूढ की भाति इधर उधर भटकते हैं। केवल वे ही उसके प्रभाव से बचते है जो उस मार्ग पर चलते हैं जिस पर चलकर, ज्ञान और श्रद्धा से पवित्र और निस्पृह होकर विवेकगिरी के अप्रमत्त शिखर पर शाश्वत जैनपुर मे जा बसे हैं और भवचक्र नगर छोड कर निवृत्त हो गये है।

सन्तोष की खोज में जैनपुरी की ओर

मामा भाजे, महामोह के वैरी संतोष को ढूढने जैनपुर की ओर प्रयाण करते है। वहा निर्मल चित्त साधुओ के दर्शन होते हैं। मामा बतलाता है कि ये वे महात्मा है जिन्होने अपने प्रचड पुरुषार्थ से महामोह आदि राजाओ को हटा दिया है और उन्हे तेज और शक्ति विहीन कर दिया है। ये महात्मा सब प्राणियो के प्रति बन्धुत्व भाव रखते है, स्त्री जाति को माता तुल्य गिनते है, धन लक्ष्मी आदि बाह्य परिग्रह और क्रोधमानादि अतरंग परिग्रह से पूर्ण मुक्त हैं, यहा तक कि निज शरीर की ममता से भी मुक्त है। ये महात्मा सत्य, मित्त वचन बोलते हैं मानो उनके मुख से अमृत ही झरता है, वे सर्व दोष रहित आहार लेते है और आहार मे किंचित भी लोलुपता नही रखते। इनका सारा व्यवहार ही इस प्रकार का है कि महामोह राजा उनसे दब जाता है। इनके सम्बन्ध मे चित्तवृत्ति की प्रमत्तता नदी बिलकुल सूख जाती है। उस नदी मे जो टापू है वे एक दम शून्य हो जाते है। उस टापू मे जो चित्तविक्षेप नामक

मंडप हमने देखा था वह नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। और उसमें जो तृष्णा नामक वेदिका थी वह मानो उखाड फेंक दी गई है। उस पर जो विपर्यास नाम का सिंहासन था वह चूर चूर हो गया है और महामोह महाराज को इन्होने चेष्टा शून्य कर दिया है। उसका मन्त्री मिथ्यादर्शन, पुत्र राजकेसरी और द्वेष गजेन्द्र, सुभट मकरध्वज, राजकेसरी का मत्री विषयभिलाष, महामोह की रानी महा मूढता सब समाप्त कर दिये गये है। इसी प्रकार अन्य सुभट हास्य, जुगुप्सा अरति, भय और शोक का उन्होने नाश कर दिया है। दुष्टाभिसधि को चूर चूर कर दिया है। सोलह कषाय छोकरो को भगा दिया है। ज्ञान सवरण आदि तीनो राजाओ का नाश कर डाला है। बाकी के वेदनीय इत्यादि चार राजाओ को अपने अनुकूल बना लिया है ऐसा जान पडता है। इस प्रकार ऐसा मालूम होता है कि मोहराजा की सब प्रकार की सेना उनके सम्बन्ध मे विनाश पा चुकी है, सब विकार गायब हो गये है। इनका ध्यान योग इतना बलवान है कि इसके कारण उनकी चित्तवृत्ति अटवी सर्व उपद्रवो रहित और ज्ञानादि अनेक रत्नो से भरपूर दृष्टिगोचर होती है।

आगे मामा कहता है कि जो सामने विशाल भव्य उज्ज्वल चित्त को शान्ति देनेवाला चित्त समाधान मडप दिखाई देता है, सन्तोष राजा वही होना चाहिये। वे दोनो उस मडप मे पहुचे, उन्हे ऐसा भान हुआ कि इस मडप मे आने से चित्त को शान्ति मिलती है और सब सताप दूर हो जाते हैं। उस मडप के बीच उन्होने एक तेजस्वी, अन्धकार

को नाश करनेवाला चार मुखवाला राजा एक विशाल वेदिका पर लगे हुये सुन्दर सिंहासन पर बैठा देखा ।

यह मडप सात्विक मानस नामक अतरग नगर मे विवेक पर्वत पर चित्तवृत्ति अटवी मे जैनपुर मे अप्रमत्त शिखर पर है । यह सात्विक मानस नगर वास्तव मे अतरग रत्न-ज्ञानादि महान् गुणो की मानो खान ही है । यद्यपि यह अनेक दोषो से भरे हुये भवचक्र के बीच बसा हुआ है तो भी वह उन सब दोषो से मुक्त है । भवचक्र मे रहनेवाले भाग्यहीन प्राणी पड़ोस के इस सात्विक मानस नगर के सच्चे स्वरूप को समझ ही नही सकते । इस अतरग नगर के आधीन निर्मल चित्त इत्यादि अनेक उप नगरादि है । कर्म परिणाम राजा ने राजसचित्त और तामसचित्त पर अधिकार राग-केसरी और द्वेष गजेन्द्र को दे दिया है और सर्वत्र महामोह महाराज की आज्ञा चलती है । पर कर्म परिणाम राजा ने सात्विक मानसपुर या उसके आधीन निर्मल मानस आदि किसी भी नगर की सत्ता किसी को नही दी, पर उसकी आय स्वय भोगते है या शुभाशय इत्यादि को देते हैं । इस नगर मे महामोह का बस नही चलता इसलिये यह सब प्रकार के उपद्रवो रहित और आह्लाद उत्पन्न करनेवाली है ।

इस सात्विक नगर के वासी जो बाह्यलोक मे है वे शूर-वीरता इत्यादि गुणो से भूषित हैं और बाहिरंग लोग यहाँ आकर बसते हैं, वे इसके प्रभाव से विबुधालय—देवलोक जाते हैं । और जो यहा रहनेवाले विवेक पर्वत से आकर्षित होकर उस पर चढ़ते हैं वे अवश्य जैनपुर पहुच जाते हैं और

सच्चे सुख के भागी बनते हैं। पापी लोग इस नगर की विशेषता नही समझ सकते पर जो सात्विक नगर के निवासी है और सन्मार्ग पर चलनेवाले हैं वे इसकी सुन्दरता और कल्याण कारिता अच्छी तरह समझते हैं।

भवचक्र नगर निवासी जब तक विवेक महापर्वत को नही देख पाते है तब तक अनेक दुखो मे पड़े रहते है, पर इस पर्वत के दर्शन होते ही उनका प्रेम भवचक्र से हट जाता है और वे उसे छोडकर विवेक पर्वत पर चढकर सब प्रकार के दुखो से मुक्त होकर सदा के लिये पूर्णानन्द प्राप्त करते हैं और सारा भवचक्र उनको एक हथेली मे रही हुई वस्तु के समान दिखता है। विवेक पर्वत से आकर्षित्त लोगो को भवचक्र से वैराग्य हो जाता है और भवचक्र मे रहते हुए भी वे सुखी रहते है।

मामा भाँजे को कहता है कि इस विवेक पर्वत का महत्व तो अब तेरे ध्यान मे आगया। अब जैनपुर के विषय मे सुन

जैनपुर एक उत्तम, आनन्द से परिपूर्ण और पुण्यहीन प्राणियो के लिये दुर्लभ नगर है। प्रथम तो सात्विक मानसपुर ही, अनेक भवचक्र करने पर भी दृष्टिगोचर नही होता, यदि वहाँ कभी पहुंच भी जावे तो भी कुछ दिन ही रहकर वापस भवचक्र मे गिर जाता है और वहा अनेक नगरो मे घूमते यह नगर नजर ही नही आता। ऐसे लोगो को विवेक पर्वत कभी दृष्टिगोचर हो जाता है तो भी उसकी सुन्दरता न समझ सकने के कारण उस पर नही चढते। कई समझते हैं तो भी ऊपर नही चढते, और वापस भवचक्र मे चले जाते हैं। कितने ही चढते हैं तो भी महादुर्लभ अप्रमत्त शिखर उन्हे

नही दीखता और कई देखते है तो भी चढने का परिश्रम नही करते । ऐसे आलसी भवचक्र मे ही भटकते रहते हैं। और भवचक्र मे ही आनन्द समझते है। पर जो भाग्यशाली इस मनोहर अप्रमत्त शिखर पर चढ जाते है तब उन्हे जैनपुर के दर्शन होते हैं। इस प्रकार यद्यपि इस महान् शिखर पर चढना महादुर्लभ है पर जो चढ जाते है वे अनुभव करते है कि वह सर्व सुखो की खान है।

जैनपुर निवासी सदा आनन्द मे सब प्रकार की बाधाओ और पीडाओ से मुक्त निवृत्ति नगरी (मोक्ष) जाने का सकल्प किये हुये प्रयाण करते रहते है। मार्ग मे कही ठहरते है तो भी वहा भी विबुधालय (स्वर्ग) मे आनन्द भोगते हैं। वे ज्ञान युक्त होने के कारण मोक्ष का मार्ग सरल करते जाते है। वहा भी महामोह आदि शत्रु है पर इन जैनपुर निवासियो के बल और धीरज से भयभीत होकर वे भाग जाते हैं।

आगे मामा जैनपुर के मडपादि का वर्णन करता है।

चित्त समाधान मडप मे प्राणी को महासुख देने की शक्ति है। जब तक प्राणी को यह मडप प्राप्त नही होता भवचक्र नगर में उसे सुख की गध तक नही मिलती है।

निस्पृहता वेदिका। जो लोग सदा इस 'वेदिका का' ध्यान रखते है उनको इन्द्रिय भोग आकर्षित नही करते। इस प्रकार पूर्व उपार्जित कर्मो को वे क्षय करने लगते है। इस वेदि को प्राप्त लोगो को किसी देवता, इन्द्र या राजा के आश्रय की भी आवश्यकता नही।

जीव-वीर्य सिंहासन जिस प्राणी के मन मे इसकी स्फुरण हो जाती है, वह केवल सुख ही अनुभव

करता है और उसे दुख होने का कोई कारण नही रहता। इस सिंहासन पर आसीन राजा बहुत सुन्दर और तेजस्वी है। इसके चार सुन्दर मुख है। यह सारे जगत का बन्धु और सबको आनन्द देनेवाला है। यहा उसका सुन्दर परिवार, उसकी सम्पत्ति और तेज दृष्टिगोचर होते हैं। इस जीववीर्य सिंहासन के कारण ही यह तेज और प्रताप है और इसी सिंहासन का प्रताप है कि महामोह राजा इस चित्त समाधान मडप में प्रवेश तक नही कर सकता।

भानजे ने इन मडपादि का यह अर्थ निकाला कि सात्विक-पुर मे जो लोग है वे विना शुद्ध ज्ञानवाले है परन्तु सात्विक मनवाले होने से विबुधालय अर्थात् देवलोक मे जाते है। इस नगर मे ये भवचक्र मे भटकते भटकते, कर्मो को अकाम अर्थात् बिना चेष्टा, निर्जरा द्वारा आये है। जिस प्रकार नदी मे गुडते गुडते पत्थर गोल हो जाते हैं उसी प्रकार प्राणी भटकते भटकते इस नगर मे आने की योग्यता प्राप्त कर लेते है। इनकी बुद्धि इतनी विकसित तो हो गई है कि ये जानने लगे है कि धन, पुत्र, घर बार इनसे वास्तव मे ये अलग हैं इनका सम्बन्ध नही है, और महामोहादि महान् दुष्ट और भयकर शत्रु है। इस विकसित बुद्धि को ही विवेक पर्वत कहा है। इस विवेक के कारण कषाय कम हो जाते है अर्थात् वे अप्रमत्त शिखर पर चढ जाते हैं। फिर शिखर के ऊपर जैनपुर है। वहाँ साधु साध्वी, श्रावक श्राविका रूपी सघ मे आनन्द-दाता द्वादशागी जैन प्रवचन है। इस नगर के लोगो से तात्पर्य द्वादशागी आज्ञाकारी सघ है। ये लोग सर्व गुणो से भूषित होने के कारण इस स्थान को चित्त समाधान मडप कहा

गया है जिसके कारण ही यहा इतनी शोभा है। इस प्रकार बातें समझी जा सकती हैं।

चारित्र धर्म का साम्राज्य

आगे मामा बतलाता है कि जो यहा सिंहासन पर राजा नजर आता है उसका नाम चारित्रधर्म है। इसमें अनन्त शक्ति है, वह जगत का हित करने मे तत्पर है, वह सर्व गुणो की खान है, उसको दड देने की प्रवृत्ति विचार पूर्वक समझने योग्य है। इसके चार मुख है·

(१) दानमुख जैनपुर के निवासियो में सत्यज्ञान का प्रचार करता है जिससे वे मोह राजा का नाश कर सकें, सर्वत्र अभय का दान देता है, विशुद्ध धर्म के आधारभूत जो मनुष्य शरीर है उसे वस्त्र, पात्र, आहार इत्यादि दो ऐसा उपदेश देता है।

(२) शीलमुख यह मुनियो को और किसी सीमा तक गृहस्थो को भी सयम के नियम बतलाता है। यह साधुओका तो आलम्बन, भूषण और सर्वस्व है।

(३) तपमुख· अन्य की आशा आकाक्षा रखने की इच्छा को नाश कर मनुष्य को बहुत सुखी बनाता है। उसे किसी के आश्रित नही रखता, निस्पृह बनाता है। प्राणियो मे सुन्दर ज्ञान पैदा करता है। मन मे समता, ससार पर सवेग, और मनुष्य को दुख रहित शाश्वत सुख प्राप्त करने योग्य बनाता है।

(४) भावमुख: यह प्राणी के पाप समूह को भंग कर सुख उत्पन्न करता है। ससार की वास्तविकता से परिचित कराता है। भवचक्र मे मनुष्य क्यो भटकता है और उस

जजाल से छुटकारा किस प्रकार पाया जावे और पूर्ण सुख प्राप्त किया जावे इसकी विचारणा पैदा करता है।

इस प्रकार यह महाराजा चारित्रधर्म अपने चारो मुखो से नगरवासी लोगो को सव प्रकार के सम्पूर्ण सुख प्रदान करता है।

इस महाराजा के साथ आधे सिहासन पर उसकी विरति रानी वैठी है। यह सुन्दर स्फटिक जैसी निर्मल महिला है। यह लोगो को आनन्द देनेवाली निवृत्ति नगरी का मार्ग वतानेवाली और सदा अपने पति के साथ रहनेवाली है।

चारित्रधर्म के पास पाच मित्र वैठे हैं जो राजा के जीवन है, प्राण है, सर्वस्व है। वे हैं (१) सामायिक, जो जैनपुर मे सव पापो से विरति कराती है (२) छेदोप्स्यान जो पापो को रोकता है (३) परिहार विशुद्धि जो सुन्दर तप विधान वताता है (४) सूक्ष्म सम्पराय जो कषायो को उपशम करता है और उनका वल घटाता है और (५) यथाख्यात यह कषायो को क्षय करता है। यह वहुत निर्मल और सर्व पापो को नाश करनेवाला है।

मामा वार्ता आगे चलाता है और बताता है कि चारित्र-धर्म के पास उसका युवराज, उसकी गद्दी का उत्तरा-धिकारी, यतिधर्म वैठा है और उसके आसपास दस मनुष्य वैठे हैं। (१) क्षमा (२) मार्दव (नम्रता) (३) आर्जव (सरलता) (४) मुक्तता (तृष्णा रहित) (५) तपयोग जिसके साथ १२ अग रक्षक है। इनमे से ६ अनशन बाह्य अगरक्षक (उपवासादि) अनोदरी (भूख से कम भोजन)

अभिग्रह (जीवन नियमित) वृत्ति सक्षेप (अपनी वृत्ति पर सयम) रस विजय त्याग (स्वाद पर सयम) काय क्लेश (कष्ट सहने की आदत डालना) और सलीनता (आचार पवित्रता की शिक्षा)। अन्य ६ अंतरग अग रक्षक इस प्रकार है। प्रायश्चित, विनय, वैयावच्च (सेवा) स्वाध्याय (धर्मध्यान) ध्यान और उत्सर्ग (वस्तुओ और शरीर पर ममत्व त्याग) (६) सयम (मन, वचन, काया पर नियत्रण (७) सत्य (८) शौच (दोष रहित आहार और कषाय रहित अध्यवसाय। (९) अकिंचन्य (निष्परिग्रह) (१०) ब्रह्मचर्य। यह युवराज यतिधर्म के दस मनुष्यो का परिवार है।

यतिधर्म राजकुमार के पास ही उसकी पत्नी सद्भाव-सरिता बैठी है। अपने श्वसुर चारित्र धर्म को इस पर बहुत स्नेह है। और पति का तो इस पर ऐसा प्रेम है कि उसके बिना राजकुमार यतिधर्म जीवित ही नही रह सकता।

यतिधर्म का छोटा भाई गृहधर्म भी पास ही बैठा हैं इसका १२ मनुष्यो का परिवार है जिनके नाम इस प्रकार हैं (१) स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत (२) स्थूल मृषावाद विरमण व्रत (३) स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत (४) स्थूल ब्रह्मचर्य व्रत (५) स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत (६) दिशा परिमाण व्रत (७) भोगोपभोग विरमण व्रत (८) अनर्थ दण्ड विरमण व्रत (९) सामायिक व्रत (१०) देशावगाशिक व्रत (११) पौषध व्रत (१२) अतिथिसविभाग व्रत। यह गृहधर्म कुवर जैनपुर नगर मे प्राणियो से हिंसा से थोड़ी बहुत पर सुन्दर विरति (त्याग भाव) कराता है। बडी बडी महत्व की बातो मे असत्य का त्याग कराता है,

पराई वस्तु लेने से बचाता है, पराई स्त्री के विषय मे पराङमुख करता है, परिग्रह धन सचय मे मर्यादा बाधता है रात्रि भोजन न करने को समझाता है। योग्य वस्तुओ के सिवाय अयोग्य वस्तुओ के भोग-उपभोग त्याग करने को कहता है। वेमतलब के पापो से उनको दूर रखता है। सामायिक करने की, देशावागाशिक व्रत की, और पौषध करने की, प्रेरणा देता है और अतिथि के प्रति अपना मन बहुत पवित्र और प्रेरक रखाता है। युवराज जितनी आज्ञा देता है और प्राणी निज शक्ति के अनुसार जितना पालन करता है उसी प्रमाण मे युवराज प्राणी को फल भी देता है।

पास में ही गृहधर्म की सुन्दर पत्नी सद्गुण रक्तता बैठी है। यह सदा वडो का विनय करती है। इसका पति पर बहुत प्रेम है। और यह दोनो पति पत्नी जैनपुर निवासियो को अपने स्वभाव से नित्य आनन्द मे रखते है।

अब मामा चारित्रधर्म के परिवार के अनेक प्रकाशवत पवित्र रत्नो का वर्णन करता है।

महाराज चारित्रधर्म ने अपने दोनो राजकुमारो को देखभाल तथा पोषण करने के लिये सम्यग्दर्शन नामक प्रधान नियत किया है जिसके बिना वे नही रह सकते वह उनके साथ वात्सल्य पूर्ण व्यवहार रखता है, उनकी रक्षा करता है, और उन्हे स्थिर करता है। जीव, अजीव, आश्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष, इन सात तत्वो के सम्बन्ध मे उनको शिक्षा देता है और समझाता है कि इनमे सव वस्तुओ का समावेश हो जाता है। प्राणी मे भवचक्र की रखडपट्टी मे से निकलने की इच्छा उत्पन्न करता है, ससार से उदासीनता

समता और विरक्त भाव पैदा करता है। जीवो पर अनुकम्पा, शुद्ध दैवाधिदेव पर पूर्ण आस्तिक भाव, शम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य, इसके शूरवीर दूत है। प्राणियो को सव जीवो के प्रति मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्य भाव उत्पन्न करता है। उनका मन वहुत सुन्दर रखता है, और निवृत्ति (मोक्ष) नगरी जाने की दृढ इच्छा उत्पन्न कर प्रतिदिन धीरे-धीरे उस ओर अग्रसर करता है।

सम्यग्दर्शन की वगल मे सुन्दर आकर्षक स्त्री, उसकी पत्नी सुदृष्टि बैठी है, जो अपनी पूरी शक्ति सन्मार्ग मे और जैनपुर निवासियो की सेवा मे लगाकर उनमे चित्त की स्थिरता लाती है।

इस प्रकार चारित्रधर्म , सम्यग्दर्शन, सुदृष्टि आदि जिस प्रकार जगत को आनन्द पहुँचानेवाले है उसी प्रकार मोहराज, मिथ्यादर्शन कुदृष्टि आदि इनके विरोधी, सदा उनके विरोध मे अपनी सेना तैयार करने मे लगे रहते हैं।

इस पारस्परिक युद्ध मे सम्यग्दर्शन कभी मिथ्यादर्शन की सेना को पूरी तरह से मार भगाता है (क्षायिक रूप), कभी थोड़े समय के लिये भगाकर दूर करता (औपशमिक रूप) और कभी कुछ सैनिको को तो क्षय कर देता है और कई को दवा देता है (क्षयोपशमिक भाव) वह तीन रूप उसके स्वभाव ही से है, या उसके साथ सद्वोध नामक मत्री है वह ऐसा कराता है।

यह सद्वोध मत्री महा वलवान और पुरुषार्थी है। यह मत्री वर्तमान, भूत और भविष्य की सव घटनाओ को जानता है। यह सूक्ष्म से सूक्ष्म भावो को भी जानता है। यह तो

स्थावर अथवा जंगम दुनिया को सब पदार्थों और प्राणियो को, जीव अजीव सबको, और प्रत्येक द्रव्य के गुणो को और पर्यायो को अच्छी तरह जानता है और नीति के मार्ग मे बहुत कुशल है, और सब तरह को सामरिक अथवा असामरिक सब स्थितिया उसके लक्ष्य मे रहती है। सम्यग्दर्शन को यह बहुप्रिय है और इसकी सगत से वह स्थिर रहता है। ऐसा राज्यनिष्ट, कर्तव्यपरायण, लोकमान्य और सर्वग्राही मत्री, अन्य कही भी देखने मे नही आता है। यह सद्बोध मत्री पहले बताये हुए सात राजाओ मे ज्ञानावरण राजा का खास शत्रु है।

सद्बोध मत्री के साथ उसकी पत्नी अवगति (जानना, समझना) और पाच इष्टमित्र अभिनिवोध (मतिज्ञान) जो जैनपुर निवासियो मे इन्द्रियो और मन द्वारा ज्ञान उत्पन्न करता है (२) सदागम (श्रुतज्ञान) यह सारे जैननगर को प्रकाशमान करता है, सब कार्यो मे उपदेश देनेवाला, सब पुरनिवासियो को सत्यमार्ग बतानेवाला, है। (३) अवधि (ज्ञान) जो अनेक रूपो द्वारा आनन्द देता है (४) मन: पर्याय (ज्ञान) यह अपनी शक्ति से लोगो के मनोभाव जान लेता है (५) केवल (ज्ञान) यह तो भूत, भविष्य, वर्तमान काल के सब पदार्थों, भावो और विचारो और तरगो को अच्छी तरह देख और जान सकता है, जैनपुरी से निवृत्ति नगर जानेवालो का मार्ग दर्शक है।

भानजे ने पूछा कि जिस सतोष महाराज से मोहराजा के सघर्ष की बात आपने कही थी, वह कहाँ है। इस पर मामा ने बताया कि सतोष महाराजा सयम (६ यतिधर्म) के पास

बैठा है। यह असल मे बडा राजा नही है पर महाराजा चारित्रधर्म की सेना मे एक साधारण सिपाही है, पर बहुत शूरवीर, नीति न्याय मे सदा तत्पर, बहुत समझदार, और कब युद्ध करना और कब शान्ति वार्तालाप करनी ऐसी सलाह मे बहुत चतुर है इसलिये उसे चारित्र राजा ने विशेष अगरक्षक बना रखा है।

एक समय सतोष ने अपनी शक्ति से स्पर्शन इत्यादि (इन्द्रिय लोलुपता) को पराजित कर कर मनुष्यो को निवृत्ति नगरी (मोक्ष) पहुँचा दिया। और इस कार्य मे चारित्र-धर्म की पूरी सेना ने इसकी सहायता की। जब यह बात महामोह इत्यादि तक पहुँची तो वे भी लडाई करने निकल पडे। चित्तवृत्ति अटवी मे युद्ध के योग्य बहुत भूमि है वहा महामोह और सतोष राजाओ मे अनेक बार युद्ध हो चुके है। पर इन दोनो मे कभी एक दब जाता है और कभी दूसरा, पर पूर्ण रूप से कोई भी विजयी नही होता और ऐसा अन्तकाल से चला आ रहा है। इस युद्ध के अन्तिम परिणाम क्या होगे यह मैं नही जानता।

आगे मामा ने बताया कि सतोष के बगल मे जो कमल नयना सुन्दर युवति बैठी है वह सतोष महाराजा की धर्म पत्नी निष्पिपासिता (तृष्णा रहित गुण) है। यह मनुष्यो को इन्द्रिय विषयो पर की तृष्णा को दूर भगाती है। इन्द्रिय भोग किया जावे या न किया जावे इस द्विधाभाव को दूर करती है। यह चित्त को तृष्णा और रागद्वेष रहित बनाती है। किसी कार्य मे लाभ हो, या न हो, सुख हो या दुख हो, सुन्दर वस्तु के साथ सयोग हो या खराब से सम्बन्ध, आहार

भी मनोनुकूल हो या न हो, ऐसी परिस्थितियो मे भी यह शांति रखती है, धैर्य और स्थिरता देती है।

अब मामा भानजे ने चारित्रधर्म राजा की चतुरंगी सेना देखी जिसमे गंभीरता, शूरवीरता इत्यादि रथ थे जो चलते समय चारो तरफ अपनी झनकार से गूंज रहे थे, कीर्ति, श्रेष्ठता, सज्जनता और प्रेमप्रणाय रूप हाथी थे, जिनके शब्दो से भवन गूज रहा था, बुद्धि की विशालता, वाक्चतुरता और निपुणता रूपी घोडे हिनहिना रहे थे, अचपलता (स्थिरता) दाक्षिण्यता, मनस्वीता आदि सेना के योद्धा, यह चतुरंगी बलवान सेना ऐसा भ्रम उत्पन्न करती थी मानो एक विशाल गभीर शान्त समुद्र है।

मामा और भानजे इस प्रकार अपनी यात्रा का उद्देश्य पूरा करके घर लौटने को रवाना हुये।

सज्जन पुरुष

सज्जन पुरुषो का मन मक्खन की भाति सुकोमल होता है। जब अपनी भूल पर पश्चाताप का ताप लगता है तो वह पिघल जाता है। जिन प्राणियो का मन निर्मल हो जाता है और निज की आत्मा स्फटिक जैसी शुद्ध हो, तो भी उन्हे उस मे दोष दिखाई देते हैं और दूसरो मे दोषो के ढेर हो तो भी वे उन्हे बिल्कुल निर्मल लगते है। महा बुद्धिशाली मनुष्य जो सदा परोपकार मे तत्पर रहते है, वे यदि कभी भी कारण वश कठोर वचन भी बोल देते है, क्रुद्ध भी हो जाते हैं, तो भी जब उन्हे अपनी भूल याद आती है, अपने आचरण पर विचार करते हे, तो उनके मन मे अवश्य पश्चाताप होता है।

अमृत वचन

इस ससार रूपी महा वन मे भटकते भटकते महामुश्किल से कभी अतिरमणीय मनुष्य भव प्राप्त होता है। हे मनुष्यों, ऐसे अवसर पर उपमा विहीन सुख-मोक्ष सुख प्राप्त करने के लिये बराबर भारी प्रयास हर प्रकार से करते रहना चाहिये, और विशेष कर ऐसा सुन्दर भव अभिमान मे, असत्य भाषण मे, अथवा जिव्हा लोलुपता मे (तथा अन्य ऐसे ही दुर्गुणो मे) पडकर नष्ट न करो।

इसके विपरीत मनुष्य भव मे आकर अभिमान करोगे, रसलम्पट हो कर जिव्हा के स्वाद मे पड जाओगे, असत्य आधीन हो जाओगे (अथवा अन्य दोषो का पोषण करोगे) तो इस मनुष्य भव मे ही विविध प्रकार की पीड़ा पाओगे, और अन्त मे दुर्गति प्राप्त करोगे ! यह बात सदा ध्यान मे रखना चाहिये।

इसलिये तुम माध्यस्थ भाव धारण कर विशुद्ध अन्त. करण धारी बनकर इन्दिय लोलुपता, कषाय और हिसा आदि पाच दुर्गुणो का त्याग कर जैनधर्म पर विशेष प्रेम करो, क्योकि ऐसा करना तुम्हारा कर्तव्य है। इसीमे तुम्हारा स्वार्थ है, परमार्थ है, आत्मोन्नति है, निवृत्ति नगरी की ओर प्रयाण है, यही अनत सुख प्राप्ति का केन्द्र और परम अव्याबाध सुख प्राप्ति का साधन है यह श्री सिद्धर्षिगणि का उपदेश है।

(जैन) मार्ग प्राप्ति का आनन्द

महात्मा पुरुषो को उत्तम स्त्री मिले, पुत्र मिले, राज्य मिले, धन मिले, चाहे जितने अमूल्य रत्न मिले, या स्वर्ग

का सुख ही क्यो न मिले उनको सतोष नही होता क्योकि यह सब सुख तुच्छ है, दिखावटी है, बाह्य है और क्षणिक, अस्थाई है। इसलिये विचारशील धीर पुरुषो को उनसे सतोष नही होता। पर ऐसे महात्मा पुरुष इस महा भयकर भवसमुद्र मे जैनमार्ग तीर्थंकर महाराज, सर्वज्ञ का वताया हुआ मार्ग, जो जन साधारण को मिलना साधारणतया महा दुर्लभ है, उसे प्राप्त कर लेते हैं और हर्षोल्लासित हो जाते है। इसका कारण यह है कि सर्वज्ञ महाराज का बताया हुआ मार्ग प्राप्त होते ही समता सुख रूपी अमृत का स्वाद अनुभव करने लगते है और उन्हे विश्वास हो जाता है कि यह मार्ग अनन्त आनन्द पूर्ण मोक्ष सुख साधन का उपाय है। ऐसे अनन्त सुख के सामने स्त्री, पुत्र धनादि या स्वर्ग के सुख भी कोई मूल्य नही रखते। ऐसे सर्वज्ञ मार्ग की प्राप्ति से सज्जन महात्माओ को हर्ष और आनन्द हुए बिना कैसे रह सकता है। जिनको तत्वज्ञान प्राप्त नही हुआ है ऐसे क्षुद्र हृदयवाले प्राणी तो थोडा धन या राज्य आदि मिलने पर ही अभिमान मे मस्त हो जाते है। वे इस परम आनन्द को क्या समझे।

साधु का सुख

संसार मे फसे लोगो के सुख-दुख मिश्रित है। इसके विपरीत साधु को सुख ही सुख है। उनके सब उपद्रव नाश पा चुके हैं। इसके कारण ये है. उनका मोहाधकार एकदम नाश हो चुका है उन्हे विशुद्ध सत्य ज्ञान प्रगट हो चुका है। वे दुराग्रह नही करते। ममता रहित होते है। उनकी रग रग मे सतोष रूपी अमृत व्याप्त रहता है। उनकी भव बेल (भव भटकने के

कारण) प्राय टूट चुकी है। वे धर्ममेघ रूप समाधि मे एक दम स्थिर होते हैं। उनके अन्तरग अन्त पुर मे ग्यारह प्रेमी पत्निया निवास करती है १. धृति (क्षमा) २. श्रद्धा (आत्मिक और धार्मिक) ३. सुखासिका (वास्तविक सुख प्राप्ति की इच्छा) ४. विविदिषा (जिज्ञासा) ५. विज्ञप्ति (नियम आदि की) ६ मेधा (बुद्धि) ७ अनुप्रेक्षा (विचारणा चिन्तवन) ८. मैत्री ९. करुणा (दया) १०. मुदिता (प्रमोद भावना) ११. उपेक्षा (माध्यस्थ भावना)

उन्हे धृति सब परिस्थितियो मे सतोष देती है, श्रद्धा चित्त प्रसन्नता देती है, सुखासिका चित्त को आनन्दित करती है, विविदिषा, हृदय को शान्ति देती है, विज्ञप्ति प्रमोद उत्पन्न करती है, मेधा सुन्दर बोध देती है, अनुप्रेक्षा हर्ष का कारण बनती है, मैत्री सानुकूलता उत्पन्न करती है, करुणा वात्सल्य भाव जगाती है, मुदिता चित्त को आनन्दित करती है और उपेक्षा, सर्व उद्वेगो का नाश करती है। इन ग्यारह पत्नियो के प्रेम मे मुनिश्वर लोग सदा आनन्द मे रहते हैं और इनके प्रसग से अपने आप को ससार सागर तैरा हुआ, और मोक्ष सुख सागर मे डूबा हुआ मानते है। यह सब अनुभव सिद्ध है। शान्त चित्तवाले और विशुद्ध ध्यानवाले मुनियो को जो सुख प्राप्त है वह सुख न देवो को है न इन्द्रो को और न चक्रवर्ती राजाओ को। जो अपनी देह से भी ममत्व नही रखते, उनके सुख को कौन समझ सकता है, उसकी बात ही कौन कर सकता है, जो सुख ये मुनिगण अनुभव करते है वह साधारण मनुष्य की समझ के बाहर हैं।

शिवालय यात्रा

यह प्राणी जब भवग्राम (ससार) मे भटकता फिरता है तब उसे राग द्वेष आदि चोरो की ओर से अनेक प्रकार की विडम्बना होती है, दुख पाते हैं, निजी वास्तविक ऐश्वर्य को भूल जाते है, अपने वास्तविक सच्चे हितैषी कुटुम्ब से वियोग पाते हैं और ससार के पुजारी होकर थोडी थोडी भिक्षा से जैसे सतुष्ट हो जाते है। कर्मो के उन्माद से त्रसित दीखते है। ऐसी दशा मे इनकी दयनीय स्थिति देखकर गुरु महाराज को उनके प्रति करुणा उत्पन्न होती है और उस प्राणी को दुखो से उबारने के विचार आते है, उसे दुखो से छुडाने के उपाय ढूढने लगते है, जिनेश्वर भगवान रूपी महा वैद्य के उपदेशो से उपाय जाने जाते है और उन्हे अपने हृदय मे धारण कर लेते हैं।

फिर जब कभी रागादि चोर सो जाते हैं (क्षयोपशम भाव प्राप्त हो जाता है) ऐसी स्थिति का लाभ उठाकर यह शुद्ध जीव स्वरूप रूपी धर्माचार्य शिव मन्दिर (आत्मा) मे जाकर, जो वहा सत्य ज्ञान का दीपक रखा है, (आत्मा का स्वाभाविक पर कर्म आच्छादित गुण है) उसे प्रज्जवलित कर उस प्राणी के हाथ मे सम्यग्दर्शन रूपी प्रवल वज्रदड देते हैं। उस समय, उस प्राणी का आत्म स्वरूप रूपी शिव मन्दिर सत्य ज्ञान रूपी दीपक से देदीप्यमान हो जाता है, अर्थात् गुरु महाराज के वचनानुसार वह पहले महामोह आदि डाकुओ को जिनको अब तक वह अपने मित्र समझ रहा था और रागादि चोरो को जिन्हे अपना हितैषी मानता था, उन

पर वज्रदंड से आक्रमण करता है। फिर जैसे जैसे उन चोर डाकुओ पर वज्रदंड की मार पडती है, इस प्राणी का शुभाशय बढता जाता है, पूर्व काल मे बाधे हुये कर्मों का क्षय होता जाता है। नये कर्मों का बंधन नही होता है, तुच्छ और अधम व्यवहार की ओर जो प्रेम था उसका नाश होता जाता है और आनन्द तेजस्विता (जीववीर्य) प्रकाशित होता जाता है और आत्मा निर्मल होती जाती है। उसमें से अप्रमाद शक्ति पकडता जाता है, सच्चे झूठे मन मे विकल्प हुआ करते थे वे बंद होकर समाधिरत्न मे स्थिर हो जाता है और ससार परम्परा घटती जाती है।

जब प्राणी की उपरोक्त स्थिति हो जाती है तब वह अपने चित्त रूप कोठे के दरवाजे, जो कर्मावरणे से बद हो गये थे, खोल देता है और उसके निज शुद्ध स्वभाव रूपी कुटुम्बी लोग प्रगट हो जाते है और वे कुटुम्बीजन अनेक प्रकार की सच्ची धन सम्पत्ति उसके सामने प्रकट करते है।

इस प्रकार आत्मवृद्धि प्रकट होने पर प्राणी अत्यन्त विशुद्ध ज्ञान रूप प्रकाश द्वारा वह उसे देखता है और मन मे अगाधानन्द प्राप्त करता है। उसकी वास्तविक आत्म-जागृति होती है और उसे हर्षोल्लास होता है। इस आनन्द के फलस्वरूप उसे भान होता है, कि भवग्राम दुखो से भरपूर है। इससे उसके मन में इसे छोड़ देने की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

यह इच्छा उत्पन्न होने से प्राणी की विषयो की जो मृगतृष्णा होती है, वह शान्त हो जाती है। अन्तरात्मा शुद्ध हो जाता है, सूक्ष्म कर्म के परमाणु जो थोड़े बहुत लगे हुए

हैं छूट जाते है, सर्व प्रकार की व्यवहारिक चिन्ता दूर हो जाती है, विशुद्ध आत्मा स्थिरता प्राप्त कर लेती है। योग रत्न खूब दृढ हो जाता है। उस समय यह प्राणी महा सामायिक (समभाव मे चिर प्रवृत्ति) स्वीकार करता है, इससे अपूर्व करण (आत्मविकास की ऊची स्थिति आठवा गुण स्थान) प्रगट होता है। क्षपक श्रेणी प्रगट होती है। कर्मो की विकट शक्ति का नाश होता है और उसमे शुक्लध्यान रूपी अग्नि प्रज्वलित हो उठती है। तब योगी का वास्तविक महात्म्य प्रगट होता है। आत्मा सब घाती (आत्मा के गुणो को आवरित करनेवाले) कर्मों से छुटकारा पाता है, परम योग पर उसकी स्थापना होती है और तब विमल केवलज्ञान रूप प्रकाश से देदीप्यमान हो जाता है। तत्पश्चात् जगत पर अनुग्रह-कृपा, उपकार (प्रवचन द्वारा) करता है। जब आयु अल्प रह जाती है तब वह केवली समुद्घात द्वारा सब कर्मों की स्थिति समान करता है, मन वचन काया की प्रवृत्ति (योग) का निरोध करता है और शैलशि अवस्था पर आरोहण करता है। इस ससार से सम्बन्ध रखनेवाले (भवोपग्राही) कर्मो के बन्धन काट देता है, देह रूप पिंजरे का त्याग कर देता है, और भवग्राम (ससार) को सदा के लिये त्याग कर प्राणी निरन्तर आनन्द प्राप्त कर सर्व प्रकार की बाधाओ और दुखो से मुक्त हो शिवालय (मोक्ष) नामक नगर मे पहुच जाता है। यह नगर बडे मठ की भाति है वह सार गुरु की तरह पूर्व गये हुये सार गुरुओ की तरह अपने भाव कुटुम्बियो (स्वाभाविक गुणो) के बीच सदा निवास कर निश्चित हो जाता है।

मोहराज और चारित्रराज का युद्ध

एक बुद्धकुमार और धिपण देवी के 'विचार' नामक पुत्र हुआ। वह देशाटन के लिये निकला। घूमते घूमते वह भवचक्र नगर मे पहुँचा। वहा उसे सुन्दर विशाल चक्षु और अवर्णनीय नये रस का अनुभव करती हो, सुख सागर मे डुबकी लगाती हो, ऐसी एक महिला मिली जिसका नाम मार्गानुसारिता था। बातचीत मे उसने बताया कि वह विचारक की मौसी ही है। उसने बहुत स्नेह दिखाते हुये कहा कि तू तो मेरा पुत्र है, सर्वस्व है। देश विदेश की यात्रा करने तू निकला है यह तो बहुत अच्छा किया। तू तो महान् जिज्ञासू प्रतीत होता है। इस ससार के अनेक प्रकार के दृश्य, कौतूहल इत्यादि जो देखने बाहर नही निकलता है वह कूप मडूक है। ससार मे कई प्रकार के विलास, चतुरता, चालाकी, वृद्धि होती है, कई देश भाषाएं होती है, आचरण की सुन्दरता होती है। इसी प्रकार इसमे धूर्त, कपटी, इत्यादि दुष्ट लोग भी भरे हैं जिनका यात्रा से ही अनुभव होता है। इसलिये तू जो इस यात्रा मे निकला है बहुत ही अच्छा किया। इस नगर मे अद्भुत वस्तुऐं है! इस नगर को अच्छी तरह देखने से प्राणी सारे चर व स्थिर (अचर) स्थावर और जगम भवन को देख लेता है। स्वर्गलोक मृत्यु, और पाताल लोक सब इसी मे है। विचार की भवचक्र निरीक्षण की इच्छा बलवती हुई और मौसी भी उत्साह पूर्वक भवचक्र के कौतुक दिखाने उसके साथ हो गई।

नगर मे घूमते घूमते उन्होने एक छोटा सा गाव देखा जिसके बीच मे एक पहाड़ दिखाई दिया और उस पहाड के बडे शिखर पर एक छोटासा शहर दृष्टिगोचर हुआ। मौसी ने बतलाया कि यह सात्विक मानस नगर के बीच मे विवेक पर्वत है, जिसके शिखर पर जैनपुर बसा हुआ है। यह बाते करते समय उन्होने एक कई घावो से त्रासित, बैचेन राजकुमार को देखा, जिसे लोग उठा कर दूसरी जगह ले जा रहे थे। चारो तरफ बहुत भीड घेरे खडी थी। विचार के मन मे प्रश्न खड़े हुए और उसने मौसी को पूछा। तब मौसी इस सम्बन्ध मे कहने लगी कि यहा चारित्रधर्म नामक राजा के यतिधर्म नामक पुत्र है जिसके सयम नामक एक व्यक्ति है। इसको एक बार अकेला देख कर महा दुष्ट और भयकर महाशत्रु महामोह ने बहुत पीटा। सयम अकेला था इसलिये उसने बहुत मार खाई और उसका शरीर जर्जर हो गया। अब इसे इसके फोजी इसी नगर के राज मन्दिर मे जहा इसके सब सम्बन्धी रहते है ले जा रहे हैं। मौसी और भानजे तब विवेकगिरि के शिखर पर जैनपुरी नगरी मे पहुचे। वहा राज मडल के बीच मे चित्तसमाधान मडप मे चारित्रधर्मराज बैठे है। उनके आसपास राजा बैठे हैं जिनका वर्णन मौसी मार्गानुसारिता ने कर बताया क्योकि वह सब बाते बहुत अच्छी तरह जानती थी। उसी समय घायल सयम वहा लाया गया। अपने सुभट को शत्रुओ द्वारा इस प्रकार घायल किया हुआ देखकर चारो ओर खलबलाहट मच गई। क्रोध पूर्ण यमराज की तरह सब लाल पीले और

मानो लाल अंगारे हो गये । ऐसी दशा देखकर सद्वोध मंत्री ने चारित्र धर्मराज से कहा कि इस प्रकार खलबलाहट उचित नही, इसलिये इन सब को शान्त कर उन्हे आप विचार कर उचित सलाह दे और इनकी योग्यता की परीक्षा करें।

चारित्रधर्मराज ने सब को शान्त किया, और कहा कि तुम्हे सब स्थिति तो ज्ञात हो गई है, अब क्या करना इस पर विचार करना चाहिये । इस पर सत्य, शौच, तप, त्याग, ब्रह्मचर्य आदि जो राजा वहा बैठे थे उनके मन मे युद्ध करने का उत्साह उठा और सब मिलकर बोल उठे कि हमारे संयम सुभट की ऐसी दुर्गति की गई है तो क्या हम चुपचाप बैठे रहे । अपराधी को क्षमा करने से यदि वह अधिक अपराध करने लग जाय तो उसे क्षमा नही करना चाहिये किन्तु उसे जड मूल से नष्ट कर देना चाहिये । ऐसे व्यक्ति नरम पडने के बदले अधिक जोर मे आ जाते हैं। क्षमा उनके लिये अपथ्य भोजन के समान है। उन्हे तो शिक्षा ही मिलनी चाहिये । जहा तक महामोहादि भयकर शत्रुओ को मार कर हराया नही जायगा तब तक हम जैसो को सुख की गध ही कहां से मिलेगी । आप जब तक दृढ सकल्प नही होगे तब तक उन दुरात्माओ का नाश नही हो सकता है। आपका एक एक सैनिक ऐसा वीर है कि वह युद्ध मे अकेला ही शत्रु की सारी सेना को नष्ट कर सकता है। केवल आप की आज्ञा की देर है।

अपने सैनिको का इस प्रकार जोश और उत्साह देख कर चारित्रधर्मराज अपने मत्री सद्वोद्ध और सेनापति सम्यग्दर्शन को एक ओर ले जाकर उनसे सलाह विचार करने लगा ।

सेनापति सम्यग्दर्शन ने कहा कि अपने सत्य शौचादि सैनिको ने जो युद्ध करने की इच्छा प्रगट की वही उचित है। ऐसे महा दुष्ट चित्तवाले शत्रु की ओर से ऐसी कार्यवाही सहन नही हो सकती। ऐसे कुकृत्यो को जिस किसी मे थोडा भी स्वाभिमान हो वह कैसे सहन कर सकता है? जो कोई प्राणी शत्रु द्वारा ऐसा अपमान सहन करके भी जीवित रहे, उसे धिक्कार है, इससे तो मर जाना ही श्रेष्ठ है, उसका जीवन ही व्यर्थ है। जिस प्राणी पर बार बार शत्रु आक्रमण करे और वह चुपचाप बैठा रहे, वह धूल के समान है, राख के समान है, एक तिनके के समान है मानो वह कुछ है ही नही। इसलिये हे राजन! अपने शत्रुओ का नाश कर पृथ्वी को निष्कटक बना कर ही चैन से बैठना उचित है।

तब राजा ने अपने मत्री सद्बोध की ओर दृष्टि कर उसके विचार जानना चाहा। मत्री ने सेनापति की ओर देख कर कहा कि आपने जो कहा वह उचित ही है। जिस किसी मे थोडा भी स्वमान का अश हो, वह शत्रु का ऐसा व्यवहार कदापि सहन नही कर सकता। ऐसे अपमान सहनेवाले मनुष्य का ससार मे कोई मूल्य नही। महामोह शत्रु बडा दुष्ट और नाश करने योग्य है और हमारे सैनिक ही नही किन्तु उनकी स्त्रियाँ भी उसको और उसकी सेना को नष्ट कर सके ऐसी पराक्रमी और सामर्थ्यवान है। पर एक बात ध्यान मे रखने योग्य है कि समझदार मनुष्य कोई भी कार्य अवसर देखे बिना प्रारम्भ नही करता है क्योकि नीति और पुरुषार्थ, अवसर आने पर ही सार्थक हो सकते है।

राजनीति मे छ गुण, पाच अग, तीन शक्ति, तीन उदय

सिद्धि और चार प्रकार की नीतियां मानी गई हैं इसी प्रकार चारप्रकारकी राज विद्या है। पर राज्यकी सत्य नीति चलाने मे, स्थान, यान, संधि, विग्रह (लडाई) संश्रय (सुलह की शर्ते) और द्वैधी भाव (diplomacy) यह छ. गुण आवश्यक है। राजनीति के पाच अंग इस प्रकार है (१) विकट परिस्थिति मे साम, दाम, दंड, भेद और उपेक्षा (२) देश और काल की जानकारी (३) सामरिक और आर्थिक शक्ति (४) विशेष परिस्थिति मे रक्षा के उपाय और (५) लक्ष्य सिद्धि, इसी प्रकार तीन शक्तिया (१) उत्साह शक्ति (२) प्रभाव शक्ति और (३) उत्तम परामर्श शक्ति है। इन तीन शक्तियो के परिणाम स्वरूप तीन उदय और सिद्धि मे आर्थिक, मैत्रिक और भूमिका लाभ समझना चाहिये। साम, दाम, दंड, भेद चार नीतिया हैं। इसी प्रकार चार प्रकार की विद्या है (१) तर्क विद्या, (२) शास्त्र ज्ञान, (३) इतिहास, अर्थ शास्त्रादि और (४) समय सूचकता।

मंत्री ने कहा, ये सब बाते तो आप तथा सेनापति सम्यगदर्शन जानते ही हैं। मेरा कहना यही है कि जब तक व्यक्ति अपनी अवस्था और परिस्थिति नही पहचानता उसका सब ही ज्ञान निरर्थक है। जो प्राणी कोई भी प्रवृत्ति करे, पर विवेक नही रखता है उसकी लोक मे हंसी होती है और उसका नाश ही होता है। इसलिये आपमे शत्रु को नष्ट करने का चाहे जितना उत्साह हो, परन्तु फिर भी मैं जो कहता हूँ कृपया ध्यान से सुने।

यह समूचा भवचक्र, हम स्वयं, हमारे शत्रु महामोह

इत्यादि और कर्म परिणाम नामक अपने महाराज यह सब एक महात्मा पुरुष—ससारी जीव के आधीन है। वह महात्मा हम जैसो का तो नाम तक नही जानता है और महामोह आदि हमारे शत्रुओ को अपना प्रिय और हितैषी मानता है। अब जिस सेना पर उस ससारी जीव का अधिक पक्षपात होगा वह सेना अवश्य विजयी होगी। इसलिये जब तक ससारी जीव यह न समझ ले कि हमारी सेना उत्तम है, उसकी हितैषी है और सम्बन्ध करने के योग्य है और जब तक ऐसा समझ कर वह हमारे पक्ष मे न हो जावे, तब तक युद्ध की तैयारी या युद्ध के लिये प्रयास करना निरर्थक है। ऐसी अवस्था मे राजनीति कहती है कि साम नीति का आश्रय लेना चाहिये, शत्रु की उपेक्षा कर चुपचाप बैठे रहना चाहिये। अवसर देख कर पीछे हटना (tactical retreat) भी हितकारी होती है। और बिना विचार किये शत्रु पर आक्रमण करना विनाशकारी हो जाता है।

इस पर सेनापति सम्यग्दर्शन बोला कि हमे यह कैसे पता लगेगा कि यह ससारी जीव हमको पहचानने लगा है या नही और तब तक शत्रु तो हमारे सैनिको को सयम की तरह हैरान करता ही रहेगा।

सद्बोध मत्री ने उत्तर दिया कि इसमे घबराने की बात नही है। कर्म परिणाम राजा हमारी और शत्रु की दोनो की सेना मे जाता है और ससारी जीव इस राजा की बातें ध्यान देकर सुनता है। मुझे ऐसा जान पडता है कि भविष्य मे यह कर्म परिणाम राजा संसारी जीव को हमारा भी परिचय

करायेगा और बतायेगा कि हम लोग कौन है और उसके कितने हितैषी है। तब ऐसी परिस्थिति हो जायगी कि ससारी जीव हम लोगो को अच्छी तरह जानने लगेगा, और हमारा आदर करने लगेगा तब हम शत्रु को मार हटाने के योग्य होगे। फिर कर्म परिणाम राजा, अवसर देखकर पहले तो अपनी बड़ी बहिन लोक स्थिति का अभिप्राय जानेगा फिर उचित अवसर है या नही इस सम्बन्ध मे अपनी भार्या काल परिणिति से पूछेगा, निज के विशेष सेनापति स्वभाव को सब बातो से परिचत करेगा और निजो परिवार को नियति इत्यादि से बात करेगा और ससारी जीव की पत्नी भवितव्यता को अनुकूल बनायेगा। तब ससारी जीव स्वय निर्मल होकर यह देखेगा। इस प्रकार जब सब को हमारी ओर रुचि होगी तब कर्म परिणाम राजा ससारी जीव को हमारा परिचय देगा। उस समय उसकी जानकारी मे कोई वस्तु बाधक नही रहेगी, तब ससारी जीव हमे अच्छी तरह जानने लगेगा, हमारी और उसकी दृष्टि निर्मल हो जायगी और वह हमारी बातें स्वीकार करेगा और समझेगा। तब आप हमारे दुश्मन महामोह को जड से नष्ट करने मे समर्थ होगे।

सेनापति सम्यग्दर्शन ने एक दूत भेजने की सलाह दी जिससे शत्रु को समझाया जावे कि वह इस प्रकार लोगो को त्रासित न करे, पर मत्री इस विचार से सहमत नही हुआ, किन्तु उसकी सम्मति मे तो इस समय बुगले की तरह इन्द्रियो को संकोच कर रहना चाहिये।

सम्यग्दर्शन सेनापति ने कहा कि ऐसी कायरता क्यो

दिखाई जाय, हम दूत को दंडनीति से नही किन्तु शत्रु को समझाने के लिये साम नीति के अनुसार भेजे ।

सद्‌बोध मत्री बोला कि जब विपक्षी आक्रमण करता हो तब साम नीति या शान्ति का वार्तालाप काम नही देता, इससे तो कार्य बिगड जाता है और शत्रु अधिक बलप्रयोग करेगा, परन्तु यदि आपका और महाराज का ऐसा ही विचार है तो दूत को भेज दिया जाय जिससे कम से कम शत्रु के हाल चाल का तो पता लगे, फिर जैसा उचित होगा कर लिया जायगा ।

ऐसा विचार कर उन्होने सत्य नामक दूत को भेजा । 'विचार' भानजा भी अपनी मौसी मार्गानुसारिता के साथ साथ छिपकर दूत के पीछे पीछे चलने लगा । चलते चलते वे महामोह राजा की सेना मे पहुचे ।

उन्होने देखा कि प्रमत्तता नदी के किनारे एक बडे चित्त विक्षेप नामक मंडप मे महामोह राजा विराजमान है । इस शत्रु की राजसभा मे सत्य नामक दूत पहुचा । वह यथा विधि आसन पर बैठाया गया और क्षेम कुशल वार्ता के पश्चात दूत ने उदार बुद्धि पूर्वक क्रोध को शान्त करे ऐसी भाषा मे अपने आने का कारण बताने लगा कि चित्तवृत्ति नामक अटवी मे जिसमें तुमने यह मडप और दरबार लगा रखा है उसके मालिक और अधिष्ठाता तो ससारी जीव है । बाह्य और अतरग सब ससारी राजाओ, गावों और नगरो का स्वामी भी वास्तव में तो वही है इसमे अश मात्र भी सन्देह नही, इस प्रकार कर्म परिणाम राजा या अन्य कोई

भी अंतरंग राजा हो, वे सब ससारी जीव के ही आधीन हैं, उसके नौकर हैं। इस प्रकार आपका और हमारा राजा एक ही है और हम एक ही स्वामी की भक्ति करे और पारस्परिक मेल जोल रख कर भाई भाई बन कर रहे। अपने स्वामी का हित चाहनेवालो का आपस में लडना उत्तम नही इससे निज पक्ष का क्षय ही होता है। इसलिये हमारा पारस्परिक प्रेम और मैत्री बढ कर सुख और आनन्द बढे इस प्रकार पारस्परिक मेल से रहे तो यह अपने स्वामी ससारी जीव की सच्ची सेवा होगी।

सत्य दूत की सत्य बात सुनने से सभा मे खलबलाहट मच गई और सब सेनानी क्रोधावेश मे लाल पीले हो गये। वे कहने लगे कि अरे मूर्ख तुझे किसने कहा कि ससारी जीव हमारा स्वामी है और हम परस्पर मे भाई भाई है। तू यह सब कपोल कल्पित बाते बोलता है, तेरे पक्षवाले सब नराधम है। तू यहा से भाग जा, हम भी अब सारी सेना सहित तेरे पीछे पीछे आ रहे हैं। अपने स्वामी को कह देना कि वे अपने अपने इष्ट देव का स्मरण करें।

महामोह राजा ने भी अपनी सेना को शस्त्र से सुसज्जित कर आक्रमण करने के लिये चारित्रधर्मराज के नगर की ओर प्रयाण किया। उधर सत्य दूत से सब हाल सुनकर चारित्र-धर्मराज ने भी अपनी सेना को सशस्त्र होकर युद्ध के लिये तैयार हो जाने का आदेश दिया। चित्तवृत्ति अटवी की सीमा पर दोनो सेनाए एक दूसरे के सामने आई और दोनो मे घमासान युद्ध आरभ हुआ। एक ओर चारित्रधर्मराज के

आधीन राजाओ की सेना के शस्त्रो से प्रकाश किरणें निकल कर चारो ओर के अधकार का नाश कर कर प्रकाश फैला रही थी, तो दूसरी ओर महामोह राज के आधीन दुष्ट राजाओ की सशस्त्र सेना अपने श्याम वर्ण शरीर तथा अस्त्रादि से चारो ओर प्रचड अधकार प्रसारित कर रही थी, जिसके कारण ज्ञान रूप प्रकाश विलोप रहा था। दोनो सेनाओ का युद्ध भयंकर रूप धारण करता जा रहा था, अनेक प्रकार के वाजे वज रहे थे तथा भयकर कोलाहल और चिघाडो से ससार के प्राणी त्रासित हो रहे थे। महामोह राजा की सेना अपने शत्रुओ का सहार कर रही थी और जयनाद कर रही थी।

इस युद्ध मे चारित्रधर्मराज की धर्म सेना अनेक भयकर शस्त्रो से मार खा गई, और उसके हाथी घोडे रथो की टुकडिया दव गई, और शत्रु की भयकर गर्जना सुन कर सारी सेना धूज उठी।

अन्त में महाबलवान चारित्रधर्मराज पर बलवान महामोह राज ने युद्ध में विजय प्राप्त की। चारित्रधर्मराज की सेना विखर गई और अपने दुर्ग मे घुस गई और मोहराज की सेना ने घेरा डाल दिया। मोहराज की सत्ता चारो ओर फैल गई और चारित्रधर्मराज घेरे में बन्द हो गया।

सारा युद्ध देख कर विचार ने अपनी मौसी मार्गानुसारिता से पूछा कि इस युद्ध का कारण क्या है, क्यो यह भयकर युद्ध चलता रहता है। मौसी ने उत्तर दिया कि राजकेसरी राजा के मत्री जगत को अपने वश मे करने के

लिये निजी पाच लोगो को स्पर्श, रसना, घ्राण, दृष्टि, और श्रोत भेजे, ये प्राणियो के मन को अपनी तरफ आकर्षित कर कर समूचे जगत को अपने वश मे कर लेते हैं, ये वडे वलवान हैं। चारित्रधर्मराज के एक संतोष नामक मत्री ने इन पाचो को एक वार खेल खेल मे ही हरा कर पीछे हटा दिया था इस पर ही दोनो पक्षो मे विरोध खड़ा हो गया जिसके परिणाम स्वरूप इन अतरग राजाओ मे भयंकर महायुद्ध चल रहा है।

पुरुष:कथानक

कर्मपरिणाम महाराज और काल परिणिति महारानी के अनेक वालक हैं। वहा एक सिद्धांत नामक महापुरुष है जो सदा शुद्ध सत्य वचन बोलता है, सर्व प्राणियो का हितकारी है सवके भाव और स्वभाव जानता और समझता है और महाराज और महारानी के सब रहस्य गुप्त भेद और बाते अच्छी तरह समझता है। उसके अप्रवुद्ध नामक शिष्य ने एक दिन गुरु से अनेक प्रश्न किये और गुरु ने उत्तर दिये जिनका सार इस प्रकार है

प्रत्येक प्राणी सुख की इच्छा करता है, और दुख कोई नही चाहता। इसलिये सव सुख की प्राप्ति के लिये दौडते है और दुख से दूर भागते हैं। सुख और दुख दोनो का कारण, इनके परस्पर विरोधी होते हुये भी केवल राज्य ही है। और

वह वाह्य राज्य नही है किन्तु अंतरग राज्य है, जो सब प्राणियो को प्राप्त है। जो प्राणी इस अतरग राज्य को अच्छी तरह से पालते और शासन करते हैं, वे सुख अनुभव करते है। और इससे जो विपरीत करते हैं वे दुख का अनुभव करते हैं। वह सामान्य दृष्टि से एक हो रूप है—और विशेष दृष्टि से विविध रूपवाला है। इस सामान्य राज्य का राजा स्वय संसारी जीव है। इसके भडार मे अनेक श्रेष्ठ स्वाभाविक भाव रत्न—समता, ध्यान, ज्ञान, वीर्य इत्यादि हैं। इसके तीन भवनो को आनन्दकारी निर्मल शक्तिशाली सेना है, जिसमे गभीरता, उदारता, शूरवीरता रूप वड़े-वडे रथ है, यश सज्जनता, प्रेम इत्यादि वड़े-वड़े हाथी हैं, विस्तार पूर्ण बुद्धि, वकतृत्व शक्ति निपुणता इत्यादि घोड़े हैं। धीरता, प्रसन्नता, प्रशस्त मन, दाक्षिण्यता, इत्यादि सेना की टुकडिया हैं। ये सब महाराजा ससारी जीव की आज्ञा मे हैं। इनका प्रतिनायक, चार मुख वाला चारित्रधर्म है जिसका सेनापति सम्यग्‌दर्शन और मत्री सद्‌बोध है। यतिधर्म और गृहधर्म नाम के दो बालक हैं। सतोष नामक प्रधान और शुभाषय इत्यादि सैनिक है। ससारी जीव की यह चतुरग सेना वहुत सुन्दर और गुण समूह से भरी हुई है। ससारी जीव जब पूर्ण रूप से निर्मल होता है, तब ही वह इन सबको पहचान सकता है। इस राज्य की स्थापना चित्तवृत्ति नामक अटवी मे की गई है, जिस पर ही सबका आधार है। इस चित्तवृत्ति मे सात्विक मानसपुर, जैनपुर विमल मानस, शुभ्रचित्त इत्यादि छोटे बड़े अनेक नगर और गाँव है।

इसी महाराज्य में घाती कर्म नामक डाकू, इन्द्रिय नामक चोर, कषाय नामक ठग, नोकषाय नामक लुटेरे घूमते हैं। इसमे परिषह नामक उपद्रवी हैरानी फैलाते फिरता है। वहा उपसर्ग नामक भयकर सर्प रहते हैं और प्रमाद नामक लपट मौज करते हैं। इन सबके दो नायक—कर्म परिणाम और महामोह हैं ये दोनो महाऋद्धिवाले बहादुर अभिमानी और भारी सेनावाले हैं। वे अपने आपको सब कुछ समझते हैं, ससारी जीव को कुछ नही समझते। उनके विचार मे चारित्रधर्मराजा कोई वस्तु ही नही है, उसे बलहीन समझते हैं। चित्तवृत्ति अटवी को अपनी बपौती समझते हैं। 'वे समझते है कि उसका विरोध करने की किसी की भी हिम्मत नही है। इस प्रकार सब चोर डाकुओ ने मिल कर कर्म परिणाम को अपना राजा बना लिया है और अपना काम बहुत बढ़ा लिया है।

इन्होने मिलकर राजसचित्त, तामसचित्त, रौद्रचित्त आदि नगर बसाकर महामोह को राजा बना लिया है, सारी सेना उसको अर्पण कर दी है, अपने विचारानुकूल सब राज व्यवस्था की है और राज्य का भार महामोह राजा को सौप दिया है।

कर्म परिणाम राजा और कालपरिणिति रानी मनुजगति नगरी मे बैठे ससार नाटक देखते रहते है जिसका इन्हे बहुत शौक है। कर्मपरिणाम राजा ससारी जीव की शक्ति को अच्छी तरह जानता है और साथ मे चारित्रधर्म राजा उसके मत्री सद्बोध, सेनापति सम्यग्दर्शन, सेनानायक सतोष शुभाशय आदि सैनिको को, उनकी शक्ति को और उनके

प्रभाव को अच्छी तरह जानता है। इसलिये वह ससारी जीव की उपेक्षा नही करता है, सदा भविष्य पर दृष्टि रखता है, चारित्रधर्मराज इत्यादि की ओर भी प्रेम दृष्टि रखता है, और प्रेम बढ़ाने का ध्यान रखता है। इसलिये चारित्रधर्म राज और उसका समस्त मडल कर्मपरिणाम राजा को तटस्थ और माध्यस्थ भाववाला मानते हैं, उसे अपना स्वामी मानकर सद्व्यवहार करते हैं। इसलिये संसारी जीव के महाराज्य मे भी कर्मपरिणाम राजा को बडा मानते हैं, उसकी सलाह लेते है और चारित्रधर्मराज भी उसका मान करता है।

इधर चोरो का महाराजा, मोह राजा अपने बाहुबल के अभिमान मे ससारी जीव को या चारित्रधर्मराज और उसकी सेना को एक तिनके के बराबर भी नही मानता है, और निज को ही सर्व शक्तिमान मानता है। इसलिये जब तक ससारी जीव को यह भान नही होता है कि यह उसी का राज्य है और वह अखूट बन ऋद्धि का स्वामी है और जब तक उसे अपनी सत्ता और शक्ति का भान नही है, अपनी सेना के बल पर उसे विश्वास नही है तब तक मोहराजा ससारी जीव की सब भूमि पर, राज्य पर, आक्रमण करता है, उसे घेर लेता हैं, सब नगरो पर अपना अधिकार कर लेता है और आनन्द मनाता है। ससारी जीव को वह एकदम सत्वहीन बना देता है। उसका बल नष्ट कर देता है। और ससारी जीव के राज्य को अपनी निजी सम्पत्ति मानने लग जाता है। फिर जब कभी ससारी जीव को भान होता है कि यह सारा राज्य और ऋद्धि मोहराजा की नही है, किन्तु वह स्वय

उसका स्वामी है तब मोह राजा से झगडा शुरु होता है, युद्ध की तैयारी करता है, अपनी शक्ति, अपनी पूजी एकत्रित करता है और उनकी वृद्धि करता है।

जब ससारी जीव मोहराजा से युद्ध आरम्भ कर देता है तब कभी तो उसकी विजय हो जाती है और कभी पराजय। जब ससारी जीव की महामोह राजा पर विजय होती है तब सुख का, और जब पराजय हो जाती है तब दुख का साम्राज्य हो जाता है। पर जब युद्ध के अभ्यास से ससारी जीव अपने मे रही हुई अकल्पनीय शक्ति, वीर्य व्यक्त करता है तब महामोह आदि शत्रुओ को जड मूल से नाश कर डालता है और अपना राज्य पुन प्राप्त कर चित्तवृत्ति को छोड कर निरन्तर आनन्द और सुख मे रहने लगता है और स्वाभाविक आनन्द मे मग्न हो जाता है। इस प्रकार यह राज्य सुख और दुख दोनो का कारण है। ससारी जीव राज्य का अच्छी तरह पालन करता है उसका सुराज्य होता है तो संसारी जीव को सुख प्राप्त होता है, अन्यथा दुराज्य होता है तब दुख भोगना पड़ता है। सामान्य अन्तरंग राज्य इस प्रकार संसारी जीव के सुख और दुख का कारण है। जब दुराज्य चलता है तब ससारी जीव न तो अपने राज्य का कितना विस्तार है यह जानता है न उसे अपने बल समृद्धि या स्वय के स्वरूप का पता होता है। वह तो बाह्य प्रदेश मे भटकता फिरता है इन्द्रिय भोगो मे और कषायो और कुप्रवृत्तियो मे डूबा रहता है। ऐसी दशा मे उसकी चारित्रधर्मराज के आधीन सेनाऐ मोहराजा इत्यादि से घिरी हुई रहने के कारण अपना पराक्रम नही बता सकती।

ससारी जीव कर्मपरिणाम राजा को इतना मान देता है कि सब कार्य उसी की आज्ञा से ही होते है। ऐसी दशा मे कर्मपरिणाम राजा ने भी पूरा राज्य अपने पुत्रो मे बांट दिया है। उसके पुत्र भी अनन्त हैं तो राज्य भी अनन्त हो गये। इनमे से कोई तो सुराज्य सुख के कारण है और कोई दुराज्य दुख के कारण है। सुख दुख भी अनन्त प्रकार के होते है इसलिये राज्य भी अनन्त प्रकार के अनन्त रूपी होते है।

यद्यपि कर्मपरिणाम राजा के अनन्त पुत्र है तो भी हम समझने के लिये उन्हे ६ प्रकार (स्वरूप) के मान सकते है (१) निकृष्ट (२) अधम (३) विमध्यम (४) मध्यम (५) उत्तम और (६) वरिष्ठ। इनका विवेचन आगे किया जाता है।

(१) **निकृष्ट स्वरूप**.–कुरूप, दुर्भाग्य पूर्ण, महा निर्दयी परलोक मे अविश्वास, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से दूर भागने वाला, गुरु का निन्दक, भगवान पर द्वेष, अशुद्ध नीच अध्यवसायवाला, संसार मे अशान्ति उद्वेग उत्पन्न करनेवाला, विष का अकुर और दोषो का समूह कोई भी ऐसा दोष जिसकी कल्पना की जा सके जो इस मे न हो। गभीरता, उदारता, पराक्रम, धीरता, शक्ति स्फुरण आदि गुण तो उससे दूर ही भागते है। यह महा अधम प्राणी है जिसने अपनी आत्मा की सब शक्तियो को शून्य कर दिया है। यह अपने राज्य के विस्तार को, अपने निजी बल को, अपनी समृद्धि को, अपने स्वरूप को जानता ही नही है। यह भी नही जानता कि महामोह के चोर डाकू इसके राज्य और समृद्धि

को पचा जायेगे । वह उन्हे अपने हितैषी बन्धु समझता है। ऐसी दशा देखकर इन्द्रिय चोर, कषाय डाकू और नोकषाय लुटेरे, और उनके परिषह नामक सैनिक उपसर्ग नामक सर्प तथा मद्यादि प्रमाद बहुत हर्षित, और प्रसन्न हुये और स्थिति से लाभ उठाने का तरह तरह के कार्यक्रम बनाने लगे। उधर चारित्रधर्मराज मे शोक छा गया और ससारी जीव को अपने अन्तरग राज्य से निकाल कर महामोह राजा उसका स्वामी बन गया।

बाह्य राज्य मे भी निकृष्ट की महान दुर्दशा हुई। वह बहुत दुखी स्थिती मे आ गया, दुष्कृत्यो मे आसक्त, कुव्यसनों मे फसा हुआ दुष्ट भयकर आकृतिवाला, जन समूह का निन्दा पात्र, हीन, दीन, पर मुखापेक्षी, रोगी, गन्दा, निकृष्ट वृत्तिवाला, पराधीन, और लोगो का घृणा पात्र हो गया। उसकी ऐसी दशा और कुलक्षण देख कर्मपरिणाम राजा क्रुद्ध हुआ और उसे भवचक्र के पाप पिजर भयकर स्थान मे दण्ड भोगने को भेज दिया।

(२) **अधम स्वरूपः**—इस भव मे पूर्ण आसक्त, सर्व प्रकार के आनन्द भोग की इच्छा, इस भव को ही सब कुछ माननेवाला पर-लोक श्रद्धा, धर्म और मोक्ष से विमुख और अर्थ और काम मे (विषय भोग) आसक्त, इन्द्रियो के भोग मे रत, लोलुप, दया, दान, सचरित्रता और तप त्याग ब्रह्मचर्य को दूषण माननेवाला। महामोह राजा का आज्ञाकारी और चारित्रधर्मराज का शत्रु। वह न निज के राज्य को जानता है न अपने बल ऋद्धि आदि को, वह निज के सच्चे स्वरूप से

भी अनभिज्ञ हैं, और मोह राजा और विषयाभिलाष मंत्री इसे इस सब ज्ञान से दूर ही रखने का ध्यान रखता है। इसलिये ऐसी योजना बनाते है कि यह अर्थ और काम मे ही आसक्त रहे, धन और विषय लोलुपी रहे। और यह कार्य भार विषयाभिलाष मत्री की पुत्री योगिनो दृष्टि को दे दिया। इसके प्रभाव से वह स्त्रियो के रूप, कटाक्ष, हाव, भाव आदि मे, भोग विलास मे ही पूर्णानन्द मानने लगा, मानो इसके सिवाय संसार मे अन्य कुछ भी नही हैं, यही स्वर्ग है और यही पुण्य का प्रभाव है। इस प्रकार इन्द्रिय भोगो मे आसक्त होकर जो कुछ भी ज्ञान था, उसने खो दिया। वह केवल धन संग्रह और इन्द्रिय भोगो को ही जीवनोद्देश समझने लगा। इस प्रकार वह अपने राज्य, अपना बल, अपनी ऋद्धि शक्ति आदि सबको भूल गया। केवल दृष्टि देवी, मोह राजा आदि को ही अपना परम हितैषी मानने लग गया। वह नीच संगत मे रहने लगा, लोग उसे दुष्ट, पापी और व्यभिचारी कहने लगे, उसकी दशा दयनीय हो गई, वह कुल की, लोक की, समाज की मर्यादाओ को भूल गया, चरित्रवान लोगो का मजाक उड़ाता है। वह हीन चारित्रयो से मित्रता करता है। जिसके पास बहुत धन और भोग सामग्री हो और जो उन्ही मे अंधा हो गया हो, उसे ही मोक्ष सुख भोगी मानता है। इस प्रकार ससार का निन्दा पात्र बन कर भी अपने आप को महा सुखी मानता है। अत मे सब लोगो से तिरस्कृत होकर भी मरने पर पापी पजर (नरक) मे जाता है। इन सब का कारण केवल यही है कि वह अपनी निजी सम्पत्ति को, निजी राज्य को, निजी सेना बल, और शक्ति को नही पहचान सका।

इस प्रकार मोहराज के चोर डाकुओ ने अधम राजा की सेनाओ को हराकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। और अधम राजा अपने भाइयो, मित्रो से अलग होकर, राज्य खोकर एकदम पराक्रम हीन होगया। और अपनी परतत्र पराधीन स्थिति मे ही आनन्द मानने लगा। इन्द्रिय विषय जो दुख के कारण और दुखो को वढानेवाले है उन्हे ही सुख रूप और सुख के कारण मानने लगा। वास्तविक सुख क्या है और कहा है इसका उसे थोडा भी भान नही रहा।

इसका परिणाम यह हुआ कि वाह्य प्रदेशो मे वह नीच सगत मे रहने लगा और लोग उसे पापी व्यभिचारी कहने लगे, उसकी स्थिति दयनीय हो गई। वह कुल और समाज की मर्यादा को भूल गया और उसका उलघन करने लगा। स्वयं धर्मानुष्ठान नही करता, और करनेवालो का मजाक उडाता है। और जो उसी की तरह धन सग्रह और भोग विलास मे लगे रहते है उन्हे ही वुद्धिमान, आदर्श और महान् सुखी मानने लगा, यही उनको मोक्ष प्राप्त है ऐसा मानने लगा। इस प्रकार अपनी सच्ची सम्पत्ति, सच्चा धन गुमा कर, सुविचार हीन वन कर, कुमार्गी होकर अपने आपको महा सुखी मानने लगा, और उसी स्थिति मे आनन्द मनाने लगा। उसका आचरण वहुत नीच हो गया। अपने कुल की आवरू का उसे ध्यान नही रहा और न लोगो के उसके विषय में अभिप्राय का। उसे न पाप का विचार रहा और न अपने भविष्य का। लोग उसे कितना पतित नीच कहेगे इसकी भी उसे परवाह नही। उसे कार्य और अकार्य का भी विवेक

नही रहा। उसकी ऐसी दशा देख कर सब लोग उसकी निन्दा करने लगे और उसका तिरस्कार करने लगे। इस प्रकार अतरग राज्य से भ्रष्ट हुआ और बाह्य प्रदेश मे लोगो का निन्दा पात्र हुआ और जनता ने उसके अधम कार्यो के दड रूप उसे राज्य से निर्वासित कर दिया। यह भव उसका इस प्रकार बिगडा, और मृत्यु के पश्चात कर्म परिणाम राजा ने यह कह कर कि तुझे राज्य शासन करना नही आता है, तूने राज्य के प्रति अपना कर्तव्य पालन नही किया, आज्ञा दी की वह पापी पजर (नरक) मे दड भोगे।

इस प्रकार अधमराजा, राज्य प्राप्त होने पर भी उसे न तो पहचान सका और न भोग सका, केवल हैरान हुआ। इसका एक ही कारण हो सकता है स्वय को, स्वय के राज्य को, स्वय की सेना को नही पहचानना। यह अज्ञान नही होता तो उसकी ऐसी दशा कदापि नही होती।

(३) **विमध्यम स्वरूप** —यह इस भव की बातो मे फसा हुआ है पर कभी कभी पर भव की ओर भी इसका ध्यान जाता है। विशेष कर धन सग्रह, धन रक्षण और भोग मे ही आसक्त रहता है, पर कभी कभी साधारण धर्म कार्य भी करता है, सरल स्वभावी है, सब ही देवो और धर्म गुरुओ का आदर करता है। दान देने की इच्छावाला और सच्चारित्री होता है और सच्चे धर्म की निन्दा नही करता, उसमे दोष नही खोजता। यह मोहराज और उसके लुटेरो और डाकुओ से प्रभावित तो है, पर साथ मे चारित्रधर्मराज पर भी उसकी दृष्टि है, कुछ कुछ उसे भी जानता है। इसलिये

मोहराज को भय हुआ कि यदि यह अंतरंग राज्य मे प्रवेश कर जायगा तो वह निज राज्य को, निज सेना को और निज स्वरूप को पहचानने लगेगा और उनका बल बढ़ाकर हमको त्रास देगा, और परेशान करेगा। और यदि अंतरंग राज्य से बाहर रहा तो अपनी सेना का पालन करते हुये भी हमे कष्ट नही पहुचा सकेगा। मोहराजा के सेवको ने इसलिये दृष्टि देवी की सहायता से विमध्यम राजा को अतरंग राज्य से निकाल बाहर किया पर वे चारित्रधर्मराज की सेना को कष्ट नही पहुचा सके, उसको प्रभाव हीन नही बना सके। इसलिये विमध्यम यद्यपि अपने राज्य से बाहर हो गया तथापि वह चारित्रधर्मराज और उसकी सेना का भी मान और आदर करता रहा।

इस परिस्थिति मे बाह्य राज्य मे विमध्यम की प्रवृति विशेष प्रकार की हो गई। उसने अपने समय के तीन विभाग कर अर्थोपार्जन, भोग विलास और धार्मिक कर्तव्यो मे बांट लिया। वह पैसा कमाने इत्यादि के समय धधा करता और धर्म सेवन के समय धर्म सेवन करता। इस प्रकार चारित्र-धर्मराज पर भी विश्वास रखता था, उन्हे संतोष देता था इसलिये वह विशेष शोक और दुख नही पाता था। वह सदाचारी और सुशासनकारी राजा बना रहा और धर्म, अर्थ और काम तीनो पुरुषार्थ साधता था। उसकी लोगो मे भाग्यशाली और पुण्यशाली कह कर प्रशसा होने लगी। उसका कर्मपरिणाम नामक पिता भी उसकी चेष्टा और राज्य पद्धति देखकर प्रसन्न हुआ, और उसे कभी तो सुख का

संयोग मिले ऐसे पशु स्थान (तिर्यंचगति) मे और कभी कई वार सुख प्राप्त हो ऐसे मानवावास (मनुष्य गति) मे भेजता और कभी सुख पूर्ण विवुधालय (देव लोक) मे भेजता।

(४) **मध्यम स्वरूप.**—इस स्वरूपवाला राजा अपना पूरा समय भाव पूर्वक चारो पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष मे लगाता है, और इन चारो पुरुषार्थो मे भी मोक्ष को सच्चा साध्य, और ध्येय मानता है, और वह यह समझता है कि इसे प्राप्त करने के लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये और वह यह भी जानता है कि इस साध्य प्राप्ति का उपाय धर्म पुरुषार्थ ही है। यह समझ कर वह अर्थ और काम मे विशेष आसक्त नही होता क्योंकि इनके दोषो को भी वह अच्छी तरह विचारता और समझता है। पर इनसे छूटकारा पाने केलिये विशेष पराक्रम की आवश्यकता है जो इसमे अभी नही है। वह पुत्र, स्त्री इत्यादि को परमार्थ दृष्टि से बंधन रूप मानता है पर छोड नही सकता। वस्तुस्वरुप बराबर समझता है, पर उसमें कार्यान्वित करने की शक्ति का अभाव है परन्तु सदा उसका ध्यान और लक्ष्य मोक्ष की ओर ही रहता है।

मध्यम राजा का सिद्धात गुरु से अच्छा परिचय था। उसने मध्यम राजा को कई बाते समझाई जिसके कारण वह अपने अतरग राज को कुछ पहचानने और समझने लग गया। वह चारित्रधर्मराज को सेवा को भी पहचानने लगा था। और अपना सत्य स्वरूप, अपनी वास्तविक समृद्धि को भी बहुत कुछ जानने लग गया था। सिद्धात गुरु के वतलाने से पहले वह यह भी जानने लग गया कि महामोह और उसके सहायक

और सेना उसके कितने भयंकर शत्रु हैं । इसलिये वह धीरे धीरे अपने पराक्रम का अंतरंग राज्य की भूमि पर अधिकार जमाने मे उपयोग करता था और इस प्रकार वह लगभग आधा राज्य अपने अधिकार मे ले चुका था । इससे चारित्र-धर्मराज और उसकी सेना कुछ संतुष्ट हुए और महामोह राज और उसके लोग भी इसकी शक्ति को समझने लगे और उसके राज्य पर एकाधिकार की भावना उन्होने छोड दी, और उसके दास होकर रहने लगे, पर मन मे सदा डरते रहते थे । उधर चारित्रधर्मराज और उसके सहायक सब प्रसन्न हो गये और उन्होने देखा कि दृष्टि देवी का प्रभाव अब नही रहा है ।

इस प्रकार मध्यमराजा अपने राज्य को थोडा-थोडा पुन प्राप्त करने लगा और अपना समय शासन संचालन मे लगाने लगा और अपने साम्राज्य का धीरे-धीरे विस्तार करने के अवसर देखने लगा ।

बाह्य प्रदेश मे लोग उसकी प्रशंसा करते, उसे बड़ा भाग्यशाली और पुण्यशाली कहते और सत्य मार्ग पर चलने वाला कहते ।

जैन शासनानुसार सत्य मार्ग प्राप्त करनेवाला, सच्ची श्रद्धावाला जीव, अजीव आदि तत्वों को जाननेवाला, अपनी शक्ति अनुसार बने उतना पापो से बचनेवाला (देशविरति युक्त) मध्यमराजा अपनी शुद्ध परिणिति विचारधारा द्वारा सारे संसार को आनन्दित करे ऐसे आचरण और अनुष्ठान करे इस प्रकार अपना शासन चलाता है । वह परलोक के

लिये उद्यमशील रहता है, मोक्ष के वास्तविक रूप को समझता है व इसीके अनुसार जीवन व्यवहार करता है।

मध्यमराजा के जीवन व्यवहार से कर्म परिणाम राजा कुछ प्रसन्न हुआ और उसका राज्य काल समाप्त होने पर उसे सुखो से भरपूर विवुधालय (स्वर्ग) मे उसे ले गया।

(५) **उत्तम स्वरूप**–यह राज्य अनेक महा मूल्यवान रत्नो से भरपूर है, यह बात यह राजा जानता है। यह राजा अपने राज्य की सेना के प्रत्येक अधिकारी को उसके नाम से और गुणो से पहचानता हैं। सेना कैसी है, कितनी है, सैनिको के क्या क्या नाम और गुण है, राज्य मे कौन कौन से नगर, ग्राम और स्थान है इन सब बातो से वह परिचित है। वह यह भी जानता है कि अतरग राज्य मे कौन चोर डाकू है और कौन सज्जन पवित्र हृदयवाले है, वह राज्य की सब परिस्थितियो से परिचित है और तदनुसार कार्य करने को तत्पर रहता है। वह अपनी सेना का बल बढ़ाता है और अपना यश और तेज बढाता है। वह चारित्रधर्म-राज का मित्र है और महामोह आदि शत्रुओ को पहचानता है तथा उनको दवाने और मार हटानेवाला है। इस प्रकार वह एक महान् राजा के योग्य सब गुणो से अलकृत है। इसके गुणो से हर्षित होकर चारित्रधर्म इत्यादि राजा कहने लगे कि यह प्रवल राजा अपने राज्य मे से चोर डाकूओ को थोडे दिनो मे दवा देगा और इसका शासन बहुत उत्तम और साधु पुरुषो को आनददायक हो जायगा। उधर महामोहादि इसकी शक्ति और गुण देख कर घबरा गये, हताश हो गये और मृत समान हो गये।

कर्म परिणाम राजा से राज्य प्राप्त करने के पश्चात् उत्तम राजा गुरु महाराज सिद्धांत के पास गया। और इस राज्य के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न पूछे कि इस राज्य मे किस प्रकार प्रवेश किया जाय, किस प्रकार भयंकर चोर डाकुओं को मारा जाय, किस नीति से शासन किया जाय, निजी शक्ति का कहा और किस प्रकार उपयोग किया जाय, और यह भी पूछा कि किस प्रकार राज्य त्रास रहित और निष्कंटक बनाया जाय।

सिद्धातसूरि ने उत्तर दिया कि तू सब प्रकार से योग्य है क्योंकि मोक्ष प्राप्ति की तुझे प्रबल इच्छा है और उसके लिये तू धर्म साधना के लिये तत्पर हुआ है। तू सासारिक झझटो से दूर होता जाता है, धन उपार्जन या रक्षण या इन्द्रिय विषयो मे प्रवृत नही होता है किन्तु इनका तू त्याग करता है। तेरे जैसे मोक्षप्राप्त करने के लिये प्रवृत्ति करने वाले को रास्ते मे प्रसग वश जो महान सुख प्राप्त होते हैं उनमे तू नही फसता है, उनसे तू नही दबता है और वे तेरे लिये बंधन भूत नही होते हैं। इस संसार का सब प्रपच तुझे पूर्ण रूप से प्रगट है, उसका रहस्य, उसकी विषमता तू अच्छी तरह समझता है इसलिये तू सब प्रकार से इस राज्य के योग्य है। अब तुझे किस प्रकार इसमे प्रवेश करना चाहिये, यह मैं बतलाता हूँ।

उन्होंने बतलाया कि गुरु महाराज के उपदेशो का अनुसरण करना चाहिये, उनकी सेवा करना, धर्म शास्त्रो का अच्छी तरह अध्ययन करना, उनका गहराई से रहस्य समझना

और उनमें दृढ विश्वास उत्पन्न करना, जो धर्म क्रियाएँ बताई गई है उनका पालन करना, महात्माओ की सेवा करना, दुर्जनो से दूर रहना, उनसे परिचय भी नही करना, सब प्राणियो को अपने समान समझना, उनकी रक्षा करना, उन्हे प्राण दान देना, सत्य और हितकारी वचन बोलना, पराई वस्तु एक तिनके बराबर भी बिना स्वामी के दिये स्वीकार नही करना, समस्त स्त्री वर्ग के साथ किसी भी प्रकार का सम्बध न करना, न संबंध की कल्पना ही करना, बाह्य और अंतरंग सब प्रकार के सग (परिग्रह) का त्याग करना, आत्म संयम साधक साधु वेश धारण करना, नव कोटि (नव प्रकार से) शुद्ध आहार आदि केवल शरीर निर्वाह की दृष्टि से स्वीकार करना, निस्पृही होकर ग्रामोग्राम विहार (यात्रा) करना, ऊँघ, आलस्य, निराशा अथवा शोक आदि को आने का अवसर ही नही देना, इन्द्रियो को किसी प्रकार का उद्वेग, किसी वस्तु पर आकर्षण या घृणा नही होने देना, विशुद्ध भावनाओ द्वारा प्रत्येक क्षण आत्मा को निर्मल रखना, अनेक प्रकार के तप करना, सदा स्वाध्याय करना, अत करण मे परमात्मा को स्थापन करना, पाच समिति (सावधानी पूर्वक क्रिया) और तीन गुप्ति (मन, वचन, काया का नियत्रण) द्वारा पवित्र मार्ग का अवलम्बन करना, भूख प्यास आदि परिषह (कष्टो) को और मनुष्यो, देवो आदि कृत उपसर्ग (कष्टो) को शान्ति पूर्वक सहन करना, बुद्धि और धैर्य बढाने का अभ्यास करना, शुभ योग (साधुओ की योग्यता) प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करना ।

सिद्धात गुरु महाराज ने कहा कि निजो राज्य मे प्रवेश करने के लिये ऊपर लिखे अनुसार करना चाहिये ।

उपदेश चालू रखते हुये गुरु महाराज ने कहा कि तुझे कुछ और सावधानी रखना चाहिये । तेरे अ तरग के सहायक अभ्यास और वैराग्य को साथ लेकर अ तरग राज्य मे प्रवेश करना । फिर मोहराजा के किसी व्यक्ति या सैनिक को वाहर नही आने देना, यदि आवे तो मार देना । चारित्रधर्मराज की समस्त सेना को धीरज देना, चित्तवृत्ति भूमिका को जितना भी हो सके स्थिर करना । इस राज्य भूमि मे मैत्री, मुदिता, करुणा और उपेक्षा नामक चार महा देविओ को खूब घुमाना फिराना और राज्य पालन मे जितनी भी हो सके सहायता लेना । इस प्रकार पूर्ण तैयारी करने के पश्चात् अतरग राज मे पूर्व दिशा के द्वार से प्रवेश करना । इस भूमि मे वाई ओर महामोह राजा की सेना के उपयोगी गाव, नगर, नदी, पर्वत आदि है और दाहिनी ओर चारित्रधर्मराज की सेना के उपयोगी ग्राम, नगर, नदी, पर्वत आदि है। इन दोनो सेनाओ के रहने का आधार तो चित्तवृत्ति भूमि ही है । इस भूमि के पश्चिम ओर निवृत्ति नामक नगरी है जो सारी भूमि को पार कर जाने पर आती है । जव तू सारी भूमि पार कर निवृत्ति नगरी मे पहुँच जायगा तव तेरे सर्व मनोरथ पूर्ण हो जायेगे, तुझे अ तरग राज्य प्राप्ति का वास्तविक फल मिलेगा और, तुझे सव प्रकार का आनन्द प्राप्त होगा । इसलिये बिना किसी अन्य ओर ध्यान दिये, इस नगरी तक पहुँचने का पूरा प्रयत्न करना, इसमे किसी प्रकार की मन्दता नही आने देना । इस चित्तवृत्ति के बीचो बीच होकर एक औदासीन्य

नामक राज मार्ग जाता है। वह एकदम सीधा है, और उस पर महामोह राजा का सैनिक पैर भी नही रख सकता है, और चारित्रधर्मराज की सेना को वह वहुत प्रिय है। इस मार्ग पर चल कर तू निवृत्ति नगर चले जाना। इस मार्ग मे पहले अध्यवसाय नामक सरोवर आता है। यह ऐसा विचित्र है कि यदि उसमे कूडा करकट इकट्ठा हो जाय तो वह महामोह राजा के सैनिको का पोषण करता है और चारित्र राजा के सैनिको के पीडा उत्पन्न करता है। पर जब यह कूड़ा करकट विहीन स्वाभाविक स्वस्थ स्थिति मे होता है प्रसन्न प्रतीत होता है तव चारित्रधर्मराज की सेना को पुष्ट करता है, आगे वढाता है और मोह राजा की सेना को वलहीन वनाता है। मोह राजा की सेना सदा इसे मलीन करने की चेष्टा करती है और चारित्र राज की सेना निजी लाभ और हित के लिये उसे निर्मल वनाती रहती है। इस सरोवर को शुद्ध निर्मल करने के लिये पहले वताई हुई चार महादेवियो को नियुक्त कर देना। वे इस कार्य मे वहुत कुशल है। इस प्रकार तेरे सहायक पुष्ट हो और मोह राजा की सेना दवा दी जाय, तव तू आगे प्रयाण करना। आगे चलने पर इसी सरोवर मे से निकली हुई धारणा नामक वड़ी नदी तेरे मार्ग मे आयगी। तव सव हलन चलन वन्द कर आसन स्थिर कर श्वासोश्वास रोक कर सर्व इन्द्रियो की क्रियाओ को नियत्रण मे कर एकदम नदी पर पहुँच जाना। तव महामोह आदि तेरे भयकर शत्रु नदी मे सकल्प विकल्प रूप अनेक तूफानी लहरे उत्पन्न करेंगे, परन्तु तुझे अत्यन्त सावधान होकर इन सब लहरो को उठते ही तुरन्त नष्ट कर देना चाहिये। आगे

चलने पर तुझे धर्म ध्यान नामक पुल मिलेगा, यह छोटा सा रास्ता है जिस पर तुझे चलना है। इस पर चलकर सवीर्ज योग नामक बड़ा मार्ग मिलेगा। इस पर चलने से महामोह आदि तेरे भयंकर शत्रुओं का नाश होता जायगा, उनके रहने के स्थान अस्त व्यस्त होकर नष्ट होने की दशा में हो जायेंगे। और तेरे इस मार्ग पर चलने से चारित्रधर्म इत्यादि अनुकूल मित्र बलवान हो जायेंगे। तेरी सारी अंतरंग राज्य भूमि अधिकाधिक श्वेत और विशुद्ध होती जायगी राजस-पन और तामस-पन का नाम भी नही रहेगा। इस बड़े मार्ग पर आगे चलकर फिर एक शुक्ल ध्यान नामक (दंड लोक) पुल आवेगा। इसे पार कर अति निर्मल विशुद्ध केवललोक तुझे प्राप्त होगा (तू ही केवललोक बन जायगा) और तू सर्व वस्तुओं और भावों को शुद्ध आकार में और यथा स्थित दशा में देख सकेगा। इस (दंड लोक) पुल को पार करने पर निर्वीजयोग नामक बड़ा मार्ग आयगा। इस मार्ग पर चलते चलते कुटिल शत्रुओं को बराबर करने के लिये तुझे समुद्घात नामक महा प्रयत्न करना होगा। इसके द्वारा तुझे योग नामक तीन दुष्ट वैतालों को नाश करना है तब शैलेशी नामक मार्ग आयगा। उस मार्ग पर चलते चलते निवृत्ति नगरी आयगी। इसका ऐसा नाम इसलिये रखा गया है क्योंकि वह स्थिर है वहा किसी प्रकार का दुख या बाधा नही है। इस प्रकार पूर्व कथित उदासीन नामक राज्य मार्ग पर चलते समय समता नामक योगनलिका (दूरबीन) में अपनी दृष्टि लगी रखेगा।

तो दूर के पदार्थ और परिस्थितिया अच्छी तरह देख सकेगा, फिर तुझे स्वय की सब वस्तुओ का सत्य स्वरूप दिखने लगेगा। और तू स्वय सब विषयो मे निर्णय कर सकेगा। किसी के बतलाने की आवश्यकता नही रहेगी।

यह निवृत्ति नगरी बहुत सुन्दर और आकर्षक है। वहा न मृत्यु है, न बुढापा, न दुख है, न शोक, उद्वेग, भय, क्षुधा, तृषा, न वहाँ किसी प्रकार के उपद्रव है। वहां स्वाभाविक स्वाधीन अनुपम सुख ही सुख है जिसे केवल योगी ही अनुभव द्वारा समझ सकते हैं। वह कर्म परिणाम राजा के अधिकार के बाहर है। वहा उत्तम राजा सर्व प्रकार की क्रियाओ से मुक्त केवलज्ञान मे रमण-आनन्द करता हुआ अनन्त काल तक रहेगा।

(६) **वरिष्ठ**- यह सिद्धात गुरु के उपदेशानुसार कार्य करनेवाला था। वह राज्य की परिस्थितियो से पूर्ण रूप से परिचित था। राज्य प्राप्त करने के साधन जानता था उसके राज्य पर अपनी शक्ति सुगठित कर ली थी। अनेक बहिरग महात्मा उसकी सेना मे सम्मिलित हो गये थे उनके गण (छोटे छोटे संगठन) बना दिये गये और जो महात्मा उन गणो का संचालन करते वे गणधर कहलाने लगे। वरिष्ठ राजा सिद्धांत से परिचित थे, उन्होने परोपकार की दृष्टि से गणधरो को सिद्धात बताये। गणधरो ने समझ कर सिद्धात के अग-उपाग बनाये और ससार के कल्याण के लिये उनका प्रचार किया।

यह वरिष्ठ राजा सदा परोपकार मे लगा रहता था।

स्वार्थ के विचारो को तो तिलाजली दे चुका था, ओजस्वी था, देव और गुरु का मान रखता था, आरम्भ किये कार्य को सफलता पूर्वक पूर्ण करता था। परम ऐश्वर्यवाला था। किसी के भी प्रति बैर या शत्रुता के भावो से मुक्त था। परिषह की परवाह नही करता था। उपसर्गो से नही डरता था। महामोह आदि शत्रुओ की परवाह ही नही करता था, चारित्रधर्मराज इत्यादि की सेना बल पर आत्मीय भाव रखता था, और पूरे भवन पर उपकार करने की मानो उसे आसक्ति थी ।

जब वरिष्ठ राजा ने चोरो को हटा कर अपने राज्य मे प्रवेश किया तव ससार मे अत्यन्त आनन्द फैल गया और उसका राज्य दिव्य और सदा आनन्द उत्सव पूर्ण राज्य वन गया।

वह निवृत्ति नगरी का मार्ग गुप्त न रखकर सब प्राणियो को वताने लगा और बहुत स्पष्ट शब्दो मे उपदेश देने लगा। ऐसा महान् सुख का मार्ग दर्शक होने के कारण देव, असुर और मनुष्य सब की उसके प्रति बहुत भक्ति हो गई। निवृत्ति नगर का मार्ग बतलाकर अनेक लोगो को उन्होने वहा पहुचा दिया।

इस प्रकार सुन्दर सुशासन करते हुए वह सुन्दर महा प्रतापी वरिष्ठ राजा स्वय भी उसी मार्ग से निवृत्ति नगर पहुच गया।

इस प्रकार सिद्धात गुरु महाराज ने जो वाते कही वे सव सत्य प्रमाणित हुई। उनके कहे अनुसार ही, यह देखा

गया कि सुख और दुख दोनो का कारण अतरंग राज्य ही है। जो प्राणी इस राज्य का सुचारु रूप से पालन करता है उसके लिये यह राज्य सुख का कारण बनता है और जो कुशासन करता है उसके लिये यह दुख का कारण बनता है। निकृष्ट और अधम ने राज्य का बुरी तरह पालन किया, उसे निजी राज्य है ऐसा वे पहचान भी न सके। इसलिये वह दुख का कारण हुआ। विमध्यम के लिये वह अल्प सुख का कारण हुआ। क्योकि वह प्राय राज्य से बाहर ही रहा पर उसका थोडा बहुत पालन किया। मध्यम राजा को अधिक समय के लिये सुख का कारण बना क्योकि उसने राज्य मे प्रवेश किया और किसी हद तक उसका आदरपूर्वक पालन किया। और उत्तम राजा ने और वरिष्ठ राजा ने उस राज्य का बहुत ही सुन्दर रीति से पालन किया इसलिये वह राज्य उन्हे सब प्रकार के सुख का दाता बना।

पात्रता-योग्यता का महत्त्व

उपदेश पाने की योग्यता—चाहे मिथ्या दृष्टि हो पर भव्य हो और स्वभाव से भद्रक हो, उन्ही को महात्मा साधु (सच्चा) धर्मोपदेश देने को तैयार होते है।

श्रावक धर्म की योग्यता प्राप्त करने का उपाय—

यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी आत्मा को विशुद्ध धर्म का साधन प्राप्त हो तो तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य इस प्रकार है दयालु होना, किसी का तिरस्कार नही करना, क्रोध त्याग,

दुर्जन संगत त्याग, असत्य त्याग. पर गुणो से प्रेम का अभ्यास, चोरी के विचार का भी त्याग, मिथ्याभिमान त्याग, पर स्त्री पर कुदृष्टि का त्याग, धन, ऋद्धि, ज्ञान आदि के मद का त्याग, करुणा, गुरु भक्ति, देव वंदन, सबंधियो का उचित सन्मान, स्नेहियो की इच्छा पूर्ति, मित्रो की सहायता, पर निन्दा का त्याग, पर गुणो को ग्रहण करना, स्व गुणो की प्रशसा पर नही फूलना, सुकृत्य करने का ध्यान, परोपकार, महा पुरुषो का आदर, धर्म कार्य का अनुमोदन, शुद्धाचरण रखना। इस प्रकार शुद्ध धर्म अनुष्ठान की योग्यता प्राप्त होती है।

साधुधर्म योग्यता प्राप्त करने का उपाय—अनिष्टकारी मित्रो (मोह, क्रोधादि) का साथ छोड़ना, कल्याणकारी मित्रो (क्षमा, संयम आदि) का सग करना, योग्य मर्यादाओ का उलघन न करना, लोक व्यवहार की अपेक्षा रखना, गुरु का और वडो का मान और आज्ञा पालन, दान प्रवृत्ति, भगवान की उदार हृदय से पूजा, साधु पुरुषो की निरन्तर खोज, उनसे धर्म शास्त्र श्रवण, पर्यालोचना, अर्थ समझना, उनका अनुष्ठान करना, धैर्य रखना, भविष्य काल दृष्टि के सामने रखना, मृत्यु निश्चय है यह ध्यान मे रखना, परलोक साधन मे तत्परता, मन मे विक्षेप हो ऐसा मार्ग त्याग देना, मन, वचन, काया की शुद्धि का प्रयत्न करना, (आवश्यक हो वहा) भगवान का मन्दिर वनवाना, तीर्थंकर वचन की पुस्तके प्रकाशित कराना, जीर्णोद्धार करना, नवकार मत्र का जाप करना, चार शरण (अरिहत, सिद्ध, साधु और केवली भाषित धर्म का शरण) अगीकार करना, स्वय के दुष्कृत्यो की बार

वार निन्दा करना, सुकृत्यों का अनुमोदन करना, पूर्व पुरुषो के सुन्दर चरित्र साहित्य पढना-सुनना, चित्त की उदारता रखना, उत्तम ज्ञान मे दत्तचित रहना। ऐसा करने से साधु धर्म और साधु योग्य अनुष्ठानो की योग्यता प्राप्त होती है।

सिद्धांत ग्रहण पात्रता.—बाह्य और अंतर संग का त्याग, भिक्षा पर आधार रखनेवाला भाव–मुनि ग्रहण–शिक्षा (सूत्रार्थ ग्रहण करना) धारण करता है और इसलिये वस्तुतत्व समझने की जिज्ञासावाले स्वय के तथा दूसरो के शास्त्रो के जानकार, परहित मे सदा तत्पर, पराये के हृदय-आशय समझनेवाले और गुरु नाम सार्थक करनेवाले, गुरु महाराज से सच्चा सबंध कैसे हो इसकी शोध करना, उनका विनय करना, अनुष्ठान की सर्व विधिया करना, मंडल (सूत्र, अर्थ, भजन सझ्झाय आदि) निषिद्या अक्ष (आसन और स्थापनाचार्य) मे पूरा यत्न करना, बडे छोटे का क्रम, यथा विधि भोजन (अशन) क्रिया का पालन, विकथा का त्याग, भाव पूर्वक क्रिया मे उपयोग, सूत्रार्थ विधि पूर्वक सुनना, समझने की चेष्टा रखना, सम्यक ज्ञान स्थिर करने की चेष्टा, मन को स्थिर करना, ज्ञान का अभिमान न करना, ज्ञान हीन की हसी नही उड़ाना, विवाद त्याग, शिक्षित अशिक्षित के साथ समान व्यवहार, कुपात्र को शास्त्र का अभ्यास न कराना, इस प्रकार बहु मान्य योग्यता प्राप्त होगी, शाति रूपी लक्ष्मी मिलेगी और भाव सम्पत्ति तुम्हारे आश्रित हो जायगी।

इस प्रकार की सच्ची योग्यता होने पर ही गुरु महाराज

तुमको सिद्धात का सार बतायेंगे और तुममे सुननें की इच्छा, सुनना, शास्त्र ग्रहण करना, शास्त्र धारण करना, ऊहा, अपोह, विचारना, और तत्व ज्ञान की प्राप्ति, यह बुद्धि के आठ गुण विकसित होगे। तत्पश्चात् आसेवना शिक्षा (योग्य क्रिया) उपकरण के पडिलेहण, भिक्षा विधि पूर्ण रूप से समझना, करना चाहिये। तथा इर्यापथिकी दोष का प्रतिक्रमण, आलोचना की विधि, भोजन तथा अन्य प्राकृतिक आवश्यकताओ की विधि सीखना, उपाधियो रहित होकर सामायिक प्रतिक्रमण आदि छ आवश्यक करना, विधि पूर्वक काल ग्रहण, स्वाध्याय, तथा अन्य त्रियाओ मे सावधानी रखना, पाच आचार पालन करना, चरण करण की सेवा करना (स्वानुशासन), पूर्ण रूप अप्रमाद भाव जागृत रखना, उग्र विहारी रहना, इस प्रकार तुममे वे गुण उत्पन्न होगे जिससे विना स्खलना तुम मोक्ष मे पहुचोगे।

संसार बाजार

एक बाजार था जिसमे दुकानो की लम्बी भव (जीवन) रूपी कतारें थी, जिनमें सुख दुख नामक माल खूब भरा हुआ था। लोग माल लेने वेचने और गोदामो मे भरने में लगे हुये थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ मे आकुल व्याकुल हो रहा था। पाप और पुण्य रूपी मूल्य देकर इच्छित वस्तुएँ खरीदी जा सकती थी। इस बाजार मे बहुत से अपुण्यी जीव भरे थे जो नंगे भूखे फिरते थे। इस ससृति नगरी के उच्चाधिकारी का नाम महामोह था, जिसके हाथ के नीचे काम, क्रोध आदि अनेक कार्यकर्त्ता थे। वहा कर्म नाम के चोर, लोगो से अपना कर्जा वसूल करने के लिये अनेक प्रकार के कष्ट देते थे, और उन्हे वन्दीगृह मे डाल देते थे। कषाय नामक उपद्रवी छोकरे उत्पात मचा कर तग करते थे। इस बाजार मे रातदिन हलचल रहती थी, इसके बराबर संसार मे और कोई बाजार नही था। बाजार की दूकानो की श्रेणी जहा समाप्त होती थी वहा एक मठ नामक शिवालय था जिसमे मुक्त नामक अनन्त मनुष्य रहते थे, जो सदा आनन्द मे किसी भी प्रकार के दुख विहीन, और महाबुद्धिशाली थे। इस बाजार के विषय मे और शिवालय कैसे पहुचा जाय इस विषय मे मुनिराज ने अकलक को इस प्रकार बताया।

तेरे आधिपत्य मे तेरे उपयोग के लिये एक कमरा है जिसका नाम काया है। उस कमरे मे पचाक्ष नाम के गोखडे

(झरोखे) है जिनमे क्षयोपशम नामक खिड़की है जिसके सामने **कार्मण शरीर** नामक एक चौक है। उस चौक मे **चित्त** नामक एक चपल वन्दर का बच्चा है। इस वन्दर के बच्चे को तुझे यत्न पूर्वक रक्षा और सम्हाल करना चाहिये।

यह बच्चा घर के मध्यभाग मे रहता है, और अनेक उपद्रव उसे परेशान करते रहते है। **कषाय** (क्रोध, मान आदि) रूपी चूहे, **नोकषाय** (अन्य कुभावनाऐ) रूपी बिच्छु, **संज्ञा** (आहार, भय, मैथुन, परिग्रह) नामक बिल्लिया, **राग द्वेष** नामक भयकर बडे बड़े चूहे, और **महामोह** नामक भयंकर बिलाव उसे काटते है और परेशान करते है। **परिषह, उपसर्ग** (कष्ट) नामक मच्छर, **दुष्टाभिसंधि** (दुष्ट चिन्तन) और **वितर्क** (अस्त व्यस्त विचार) नामक खटमल उसका रूधिर चूसते है। **अर्थहीन चिन्ता** नामक गिलहरियां और भयकर **प्रमाद** नामक जतु उसे त्रासित करते हैं। **अविरति** नामक मकडियो के जाले और **मिथ्यादर्शन** (अज्ञानांधकार) नामक अधेरा उसे अंधा बना देते हैं। इस प्रकार इस वन्दर के बच्चे को सदा अनेक उपद्रव त्रास देते रहते हैं जिससे हार कर वह **रौद्रध्यान** (क्रूर विचार) नामक जाजवल्यमान अग्निकुंड मे गिरता है, और कभी **आर्त्तध्यान** (विभिन्न प्रकार की चिता) रूपी गुफा मे घुस जाता है। तुझे इस वानर बच्चे को इन दोनो से बचाना चाहिये। इसका उपाय यह है कि पहले वताये हुये कमरे के पाच झरोखो के सामने पाच **विषय** नामक जहरीले वृक्ष है। वे वहुत भयकर हैं बेचैन करनेवाले गध

से वानर बच्चे को बेहोश करनेवाले है। उनका दर्शन, नाम श्रवण, और स्वाद लेना तो क्या, स्पर्श तक उस बच्चे का नाश कर देता है। इनके प्रभाव से वह इन विष वृक्षो को आम के वृक्ष समझने लगता है और उन पर मोहित हो जाता है। वह गोखड़ो के द्वारो से निकल निकल कर इन झाडो की ओर अभिलाषा पूर्वक दौडता है। कितने ही फलो को स्वादिष्ट समझ कर उन पर मोहित हो जाता है और कितनो को ही बुरे समझ कर उन पर द्वेष करता है। इन वृक्षो पर अत्यन्त मोहित होकर इन वृक्षो के नीचे जो पत्ते फूल, फल, कूड़ा करकट इकट्ठा हो रहा है, उस पर लेटता है और कर्म परमाणु **निचय** (राख, धूलि) सारे बदन के चिपक जाती है और **भोग स्नेह** नामक जल बिन्दु से सारा शरीर भीग जाता है। बन्दर चपलता के कारण इधर उधर कूद फाद कर अपने शरीर पर मिट्टी कीचड़ लगा लेता है, और उसके शरीर पर घाव हो जाते हैं, वह क्षीण होता जाता है, उसके जलन हो जाती है और वह लाल काला हो जाता है। तब वह फिर कमरे मे चला जाता है और उपद्रवो से वापस बाहर आता है इसी प्रकार कष्ट भोगता रहता है।

गुरु ने फिर इस बन्दर के दुखो से छूटने का उपाय बताया कि **स्ववीर्य** (स्वशक्ति आत्मशक्ति) नामक हाथ मे **अप्रमाद** नामक दृढ वज्रदड लेकर गोखड़ो के द्वार पर खड़ा हो जाय, और जब भी बदर जहरीले झाडो के फल खाने को आवे तो डडे के भय से उसे रोके, उसे धमकाये जिससे उसकी वह दुर्भिलाषा मिट जावे। ऐसा होने से उस पर **भोग स्नेह**

का जल सूख कर (कर्म) रज झडने लगती है और उसके घाव सूखने लग जाते है, शरीर मे शक्ति आने लगती है दुर्बलता मिटती जाती है, और शरीर के दाग मिट कर वह स्वस्थ श्वेत और रूपवान हो जाता है। फिर वह वदर चपलता छोड़कर अपने कमरे मे ही रहने लगेगा और सव उपद्रवो से मुक्त हो जायगा। क्योकि डडे के प्रहार से सव उपद्रवकारी नष्ट हो जाते हैं। तव यदि वह कमरे के द्वार से बाहर भी आयेगा तव भी उसे किसी भी प्रकार के उपद्रव नही सतायेंगे। इस वन्दर के वच्चे का इस प्रकार नियत्रण करने पर ही तू उस शिवालय मठ पर पहुचेगा। उपरोक्त वातो का भाव इस प्रकार है। रागादि उपद्रवो से प्रभावित चित्त इन्द्रियो के विषयो मे प्रवृत्ति करता है तव कर्म संचय वढ़ता जाता है, और भोग स्नेह की वासना वढती है और इससे रागादि उपद्रवो का वल और वढ़ता जाता है। इस प्रकार चूहे बिल्ली के उपद्रव वढते हैं और चित्त विषयो की ओर वार वार दौड़ता है इससे फिर कर्म वधन होता है और उनका चीठापन वढता है। इस प्रकार यह चित्त एक अन्तहीन चक्र में गिर जाता है और महान् दुखो मे फस जाता है। उससे छूटने के लिये **स्ववीर्य** रूपी हाथ मे **अप्रमाद** नामक डंडे का वरावर उपयोग करना चाहिये।

यह शरीर, सपत्ति, भोग, सगे सवधी वास्तव मे इन्द्रजाल के समान हैं, स्वप्न की भाति है और अस्थाई हैं। बुद्धि पूर्वक वरावर इस प्रकार चिन्तन करने से, इन सासारिक जालो से चित्त का वधन हट जायगा। पर पूर्व अनन्त भवो के सस्कार के कारण चित्त बारम्बार उस ओर दौड़ेगा पर इस

चिन्तन के कारण अधिक हानि नही होगी। और तू अपने चित्त को शिक्षा दें कि उसे इस प्रकार बाहर नही भटकना चाहिये, इसमे कोई लाभ नही है, तू अपने निज स्वरूप आत्म स्वरूप मे लीन रहे, जिससे तू आनन्द मे लीन रहेगा, तू समझेगा कि यह ससार तो अनेक दुखो से भरा हुआ है और केवल मोक्ष ही अनेक सुखो से भरपूर है। यही निज आत्म स्वरूप रमणता है। तू आत्मा मे ही रमण करता रहेगा तो तुझे अनन्त सुख मिलेगा, बाहर ससार मे आने से दुख ही दुख हैं।

तू विचार कर, आत्मा से बाहर जो भी कुछ है वह अस्थाई और दुखकारी है। भोग रूपी भयकर अग्नि जब तुझे जलाती हो तो उससे तू निरर्थक दुखी होता है, उसका निवारण तो आनन्द स्वरूप आत्मा के चिन्तन मे ही है। अनन्त दर्शन ज्ञान वीर्य और आनन्द से भरपूर आत्मा मे स्थिर मन होकर तू शीघ्र निराकुल हो जा। इससे तू वासनाओ की पीड़ा से मुक्त हो जायगा और भोगो के ऊपर से तेरा प्रेम हट जायगा। इस प्रकार तेरे शरीर मे से कुवासनाए निकल जाने से तू आनन्दयुक्त हो जायगा और भोगो की इच्छा छूट जायगी।

इस प्रकार चित्त को शिक्षा देने पर भी यदि वह चपल रहे तो उसे बार-बार शिक्षा दे और कषाय नोकषाय आदि उपद्रवों को अप्रमाद से हटा, और ज्ञान के उपयोग द्वारा इनके प्रतिपक्षी शुभ ध्यान सेवन कर कर उनका जल्दी नाश कर। इससे परिषह और उपसर्ग भी तुझे कष्टदायी नही होगे।

इस प्रकार तेरा चित्त रागादि उपद्रवो से मुक्त होकर मोक्ष के योग्य हो जायगा।

आगे यह प्रश्न करने पर कि उस वन्दर के बच्चे को शिवालय मठ मे किस प्रकार ले जाया जाय, गुरु ने उत्तर दिया कि पहले जो क्षयोपशम नामक खिडकीवाला कमरा (गर्भ गृह) है उसमे ६ दासिया है जिनको लेश्या कहते हैं। उनके नाम क्रमश. कृष्ण, नील, कपोत, तैजसी, पद्म और शुक्ल है। प्रथम तीन तो क्रूर है, पहली से दूसरी और उससे तीसरी कम क्रूर है परन्तु तीनो ही अनेक अनर्थों की जड़ है और उस वन्दर के बच्चे की शत्रु हैं। ये अनेक प्रकार की गदगी एकत्रित करती हैं, ससार बाजार मे जो दुकानो मे दुख भरे हैं उनका ये कारण हैं, और शिवालय मठ के मार्ग की बाधक है। अन्तिम तीन स्त्रिया शुद्ध और क्रम से अधिकाधिक शुद्ध है। ये तीनो सुख और आनन्द की कारण है और उस वन्दर के बच्चे की सच्ची सहायक बहनो जैसी हैं। वे शुद्धि और वृद्धि का कारण है और इस असारता पूर्ण ससार बाजार मे से निकाल कर शिवालय मठ जाने मे अनुकूलता करनेवाली है। इन्ही ६ स्त्रियो ने गर्भ गृह से ऊपर चढ़ने के लिये अपने बल से परिणाम नामक एक जीना बनाया है और उसके असंख्य सीढिया (पगतिये) बनाई है जिन्हे अध्यवसाय स्थान कहते हैं। इन प्रत्येक स्त्री की बनायी हुई सीढ़ियो के रग क्रमश. (१) कृष्ण (२) नील (३) कपोत (कबूतर का रग) (४) तेजपूर्ण, चमकीले रग के (५) सफेद कमल के रग के और (६) विशुद्ध स्फटिक जैसे निर्मल रंग के हैं। बन्दर का बच्चा जब तक प्रथम तीन रंग

की सीढ़ियों पर रहता या फिरता है तब तक तो वह उछल उछल कर गोखड़ों की ओर दौडता है और वहा से उन जहरीले पेडो पर कूदता और धरती पर गिरता है, धूलि मे भर जाता है और चिकनी बूदो से हैरान दुखी होता है, उसके शरीर पर अनेक चोटें लग जाती है और फिर उसे चूहे, बिल्ली त्रास देते है। इससे कई वार उसका नाश हुआ लगता है, कई वार वह बेसुध और कई वार भयकर आकृतिवाला दीखने लगता है। इस प्रकार हर समय वह बहुत सतप्त स्थिति मे दीखता है, यही उसके दुख परंपरा का कारण है। इसलिये तुझे उचित है कि उस बन्दर के बच्चे को प्रथम तीन स्त्रियो की बनाई हुई सीढ़ियो से छुड़ा कर ऊपर की उत्तम तीन सीढियो पर चढाये। उन पर चढ़ने से उसके सताप कम होते जायेगे, चूहे बिल्ली आदि से उत्पन्न क्लेश कम होते जायेगे, और जहरीले वृक्षो के आम खाने की उसकी इच्छा कम होती जायगी, उसका शरीर स्वस्थ होने लगेगा, उस पर से रज उतरने लगेगी, उसे कुछ सुख मिलने लगेगा और वह कुछ तेजस्वी रूपवान होने लगेगा। प्रकार पाचवी स्त्री की बनाई सीढ़ियो पर जाने से उसके सताप कम होते जायेंगे और उसके सुख आनन्द और रूप उन्नत होते जायेंगे और उसका रग श्वेत होता जायगा। छठी स्त्री की बनाई सीढियो पर चढ़ने से तो दुख भोगने की स्थिति बहुत कम हो जायगी, उपद्रवो का अन्त हो जायगा, उसकी आम खाने की इच्छा प्राय. समाप्त हो जायगी और उसकी कूड़े मे लेटने की इच्छा नष्ट हो जायगी, उसका मध के रस से भीगा शरीर शुद्ध हो जायगा और सर्दी का रोग

मिट जायगा, धूल और कचरा अलग हो जायगा और उसे निर्मल स्फटिक जैसी शुद्धता और आनन्द प्राप्त होंगे।

पिछली तीन स्त्रियों की बनाई हुई सीढियों पर चढ़ते चढते उसे धर्म ध्यान रूपी मंद पवन लगेगी जो मन्द होने के साथ साथ शीतल, दुख और संताप हरनेवाली होगी। वह सच्चे गुण रूपी कमल पुष्पों की सुगन्धी पूर्ण होगी। इससे वह बन्दर का बच्चा प्रमुदित होगा, और उसे इन तीनों स्त्रियों के आश्रित एक बंदरों का बड़ा झुंड मिलेगा जो इसी बच्चे के संबंधी हैं और जिनका मुखिया 'विशुद्ध धर्म' नामक एक बडा बन्दर है। उस बंदर के परिवार में धृति, श्रद्धा, सुख प्राप्ति विविदिषा (जिज्ञासा), निस्पृहता आदि बंदरियां और धैर्य, वीर्य, औदार्य, गांभीर्य, शौंडीर्य (आत्म तनमयता) ज्ञान, दर्शन, तप, सत्य, वैराग्य, अकिंचन्य, मार्दव (मान त्याग) आर्जव (सरलता) ब्रह्मचर्य, शौच (पवित्रता) इत्यादि अनेक बन्दर के बच्चे होंगे। जब बंदर का बच्चा इन पिछली तीन स्त्रियों की बनाई सीढियों पर चढेगा तो उसे वह महा बन्दर बन्दरी और उनके बच्चे जगह जगह प्रगट होंगे जो उसके निजी परिवार के हैं, इतना ही नहीं, वे उसके शरीर रूप, जीवन भूत, सर्वस्व और सच्चे हितैषी है। यह बंदरों का झुंड स्थिर स्वरूप, तेजस्वी प्रकाशमान और अपने दर्शनीय वर्ण से संसार को आल्हाद करानेवाला है। गोखडों की खिडकियों के आगे आम्रफल के वृक्ष जैसे दीखने वाले वृक्ष विषय हैं। उनकी इच्छा अभिलाषा से यह बंदर विमुक्त है, और अर्थ निचय संपत्ति रूपी फल फूल धूल कचरे में लिटानेवाली स्पृहाविहीन होते हैं। ये सब भिन्न भिन्न

सीढ़ियो पर मिलेंगे। इन सब से मिलकर वह बंदर का बच्चा बहुत आनन्दित होगा और हर्षोल्लासित ऊपर चढ़ता जायगा और अन्त मे छठी स्त्री शुक्ल लेश्या के बनाये मार्ग पर पहुंच जायगा। वहा वह बन्दरो का झुंड इस बच्चे के सारे शरीर पर गोरु चन्दन के रस का ठण्डा विलेपन करेगा। इस छठी स्त्री के बनाये हुये अति सुन्दर मार्ग पर जब वह आधी दूरी पर पहुँचेगा तब वह आनन्द मे डूब जायगा और आगे की सीढियो (पगथियो) पर चढ़ने मे असमर्थ होगा। यह बन्दर का बच्चा तेरा जीवन धन है तेरे साथ एकीभूत हैं। इसलिये जैसे जैसे वह ऊपर चढता जाता है वैसे वैसे तू भी चढता जाता है। पर अब जब कि वह आगे चढने मे असमर्थ है, उसे छोडकर ही तुझे आगे बढना चाहिये। अन्त मे इन सीढियो को भी छोड़कर तुझे निजी पुरुषार्थ द्वारा पाँच हृस्वाक्षर (अ इ उ ऋ लृ) काल (बोलने मे लगे उतना समय) बिना किसी सहारे आकाश मे स्थिर रहकर, उस कोटडी (काया) को छोड गर्भ गृह को त्याग कर बन्दर के बच्चे को छोडकर, एक झपाटे के साथ (संसार) बाजार का मार्ग छोड़ देना होगा। तब एक छलाग मार कर तू उस मठ शिवालय मे पहुँच जाना और वहा तुझ से पहले गये हुये लोगो के बीच मे अनन्त काल तक अनन्त आनन्द का अनुभव करते रहना।

इस सबका सार समझाते हुये गुरु ने कहा कि चित्त असख्य अध्यवसायो मे भटकता फिरता है इसलिये जीव भी तदानुरूप स्थानो मे जन्म लेता है। यदि चित्त दोष पूर्ण

स्थानो मे भटकता है तो संसार की रगड़पट्टी का कारण बनता है और यदि वह निर्दोष स्थानो मे रहता है तो वही मन (चित्त) मोक्ष का कारण बनता है। इस प्रकार चित्त (मन) ही वास्तविक अन्तर धन है, धर्म और अधर्म दोनो इसी पर आधार रखते हैं, सुख दुख का भी यही आधार है। इसलिये चित्त रूपी इस सुन्दर रत्न का अच्छी तरह रक्षण करना चाहिये। जीव और भाव चित्त एक ही वस्तु है। इसलिये प्राणी को भाव चित्त की रक्षा करना चाहिये यही आत्मा का रक्षण है।

जहां तक चित्त, भोग की लालसा मे धनादि के पीछे दौड़ता फिरता है तब तक सुख कैसे प्राप्त हो सकता है।

जब चित्त सर्व प्रकार के भ्रम छोड़कर एकदम स्पृहा इच्छा आशा विहीन हो जाता है और आत्मा में स्थिर हो जाता है तब ही परम सुख प्राप्त कर सकता है।

कोई भक्ति, स्तुति करे या कोप, निन्दा करे, सब पर समान वृत्ति रखे, दोनो के प्रति समभाव रखे तब ही परम सुख प्राप्त होता है, स्वयं के सगे सम्बन्धी हो अथवा शत्रु हो, हानि करनेवाले हो, सब पर चित्त मे तुल्य भाव रखे, न एक पर राग करे न दूसरे पर द्वेष करे तब ही परम सुख प्राप्त हो सकता है।

पाचो इन्द्रियो के विषय अच्छे हो या बुरे, या अनुकूल हो चाहे प्रतिकूल हो, सुख के दाता हो चाहे दुख के दाता, सब पर एक ही प्रकार की वृत्ति चित्त मे रहे, किसी भी विषय पर प्रेम या तिरस्कार न हो तब ही परम सुख प्राप्त हो सकता है।

एक मनुष्य आकर चन्दन का लेप करे और दूसरा छुरी से काटे, दोनो पर एक ही समान वृत्ति रहे ऐसी चित्त की स्थिति हो तब ही परम सुख मिल सकता है।

सांसारिक सब पदार्थ जल जैसे है, तेरा चित्त रूपी कमल उसमे न भीगे ऐसी उसकी वृत्ति हो, उसमे ही उत्पन्न है और उसके इतना निकट रह कर भी उस जल से अछूत रहे, चित्त मे ऐसी स्थिरता आवे तब ही परम सुख मिल सकता है।

प्रचण्ड युवावस्था मे झलझलाते लावण्य सुन्दरतावाली ललित ललनाओ को देखकर भी चित्त मे किंचित भी विकार उत्पन्न न हो ऐसा सुन्दर चित्त हो तब ही परम सुख प्राप्त हो सकता है।

अत्यन्त आत्म सत्व (पुरुषार्थ) धारण कर जब 'अर्थ' और 'काम' सेवन से विरक्त होकर धर्म मे आसक्त हो जाय तब ही परम सुख प्राप्त हो सकता है।

जब राजसी और तामसी प्रकृति से मन छूट जाय, मुक्त हो जाय, और समुद्र जैसे लहरो और उछालो बिना एकदम शान्त और सात्त्विक हो जाय तब ही तुझे परम सुख प्राप्त हो सकता है।

मैत्री, करुणा माध्यस्थ और प्रमोद भावना युक्त होकर जब चित्त मोक्ष प्राप्ति के लिये एकतान हो जाय तब ही परम सुख प्राप्त हो सकता है सुख प्राप्त करने के लिये ससार मे प्राणी के लिये चित्त के सिवाय अन्य कोई साधन या उपाय नही है।

सुखी कौन

जो पुरुष बाह्य तथा अतरग धन सपत्ति का त्याग कर चुका है, जिस पुरुष को इस संसार रूपी बदीगृह मे किसी भी प्रकार की स्पृहा नही रही, जिसने सब प्रकार से संतोष धारण कर लिया है और आत्मा के ध्यान योग मे मस्त रहता है, जो रात दिन समता रूपी अमृत रस का पान करता रहता है, जिसे किसी भी वस्तु या प्राणी से संग (बधन) इष्ट नही, जिसका अह भाव पूर्ण रूप से नष्ट हो चुका है, जिसका अत करण एकदम निर्मल हो गया है, ऐसे साधु पुरुष शरीर धारी होते हुए भी सुखी हैं, इनके सिवाय संसार मे अन्य कोई सुखी दृष्टिगोचर नही होता। यह कैसी विचित्र बात है कि ससार मे सर्व प्राणी सुख की वान्छा करते हैं परन्तु निस्पृहता की भूमि रूपी साधुता सिवाय अन्य कही सुख नही है।

निर्मलाचार्य और गुणधारण राजा

सुख-दुख का कारण कौन

कर्म परिणाम इत्यादि चार महापुरुष (कर्म परिणाम, काल परिणिति, स्वभाव और भवितव्यता) तेरी योग्यता-नुसार ही निर्णय कर कर तेरे शुभ अथवा अशुभ के कारण बनते हैं, तुझे सुख अथवा दुख देने का निश्चय करते है। इस प्रकार सब कार्यो का आधार तो तेरी योग्यता ही है। कर्म परिणाम आदि तो केवल सहकारी कारण है। तेरी योग्यता

ने ही तेरे भव भ्रमण तथा तेरे ससार के साथ विविध सबध रचे हैं। इस योग्यता विना कर्म परिणाम इत्यादि भी कुछ नही कर सकते इसलिये अच्छे या बुरे कार्यों (परिणामो) का कारण तू स्वय ही है। आगे चलकर निर्मलाचार्य ने कहा कि सिद्ध भगवान ने, लोगो के नियम के लिये निम्नोक्त आज्ञाऐ दी है। इन आज्ञाओ का जितने अश मे प्राणी पालन करता है उतने ही अश मे उसे सुख मिलता है और किसी भी कारण से, अज्ञान मोहादि से जिस अंश तक आज्ञाओ का प्राणी उल्लंघन करता है उतने ही अश मे दुख पाता है। वे आज्ञाए इस प्रकार हैं।

अपनी चित्तवृत्ति को विल्कुल अधकार से मुक्त सुन्दर प्रकाशमान तेजस्वी करना। उसे गाय के दूध, मोती की माला, प्रभात की ओस विन्दु अथवा चन्द्र जैसी शुद्ध करना।

महामोह राजा और उसकी सेना भयकर ससार का कारण है इसलिये उसे शत्रु मानना, सदा उसको नाश करने के प्रयत्न करना।

चारित्रधर्मराज और उसकी सेना महाकल्याण का कारण है इसलिये उसे अपने बधु की तरह मानना और सदा उसका पोषण करना।

गुणधारण राजा ने निर्मलाचार्य को कहा कि उसने इन सब का यह रहस्य समझा है कि जब निवृत्ति नगर के नाथ परमेश्वर श्री सुस्थित महाराज की आज्ञा का महत्त्व अज्ञानता के कारण न समझने से चित्तवृत्ति को भाव अधकार से मलीन बना लेता हूँ और इस प्रकार महामोहादि

शत्रुओं की सेना का पोषण करता हूँ तव कर्म परिणाम, काल परिणति, स्वभाव, भवितव्यता इत्यादि मेरे प्रतिकूल हो जाते हैं। और कर्म परिणाम राजा का पापोदय सेनापति अपने साथ मेरे विपरीत कार्य करनेवाली पूरी सेना की टुकडी लाकर मुझे अनेक श्रेणी वध दुख देता है। और इसके लिये अनेक बाह्य और अतरंग वस्तुओ को प्रेरित कर मेरे लिये दुख उत्पन्न करता है। और जब मैं अपनी योग्यता का पूरा ध्यान रखकर और श्री सुस्थित महाराज की कृपा से उनकी आज्ञा का सत्य ज्ञान प्राप्त कर उसके अनुसार वर्ताव करता हूँ भावाधकार को छोडकर चित्तवृत्ति को अधिकाधिक निर्मल बनाता हूँ और चारित्र धर्मराज की सेना को प्रसन्न करता हूँ तव कर्म परिणाम काल परिणिति, स्वभाव, भवितव्यता इत्यादि मेरा व्यवहार देखकर अनुकूल हो जाते हैं। उस समय कर्म परिणाम राजा का दूसरा सेनापति पुण्योदय अपनी मेरे अनुकूल सेना द्वारा मुझे वहुत सुख देता है। और इसलिये बाह्य और आध्यात्मिक अतरग वस्तुओ को साधन रूप मे सुख देने की प्रेरणा देता है। और इस प्रकार सुख उत्पन्न करता है। इस प्रकार यह कारणो का समूह ही कार्य उत्पन्न करता है, केवल इनमे से कोई एक ही कारण ऐसा नही कर सकता। और एक भी कारण की कमी रहने से भी कार्य नही हो सकता।

सुख लेश और सम्पूर्ण सुख

गुणधारण राजा के, राज्य श्री का, कुटुम्ब परिवार, धन रत्नादि सब प्रकार का बहुत सुख था। पर निर्मलाचार्य ने उसे सुख लेश (अल्प सुख) ही कहा। इस पर राजा ने

पूछा कि इतने सुख को भी आप सुख लेश कहते है तो पूरा सुख किसे कहते है कृपया मुझे समझावे। इस पर निर्मलाचार्य ने कहा कि वह सुख तो तुझे तब मिलेगा जब तू दश कन्याओ के साथ विवाह करेगा, उनसे प्रेम करेगा, अत्यन्त आनन्द पूर्वक उनके साथ रहेगा, विलास करेगा और जीवन-यापन करेगा। इस पर राजा को आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह तो एक विवाहित रानी को भी त्याग कर दीक्षा लेने के लिये जल्दी कर रहा है और आचार्य उसे दश कन्याओ से विवाह करने को कहते है। आचार्य ने उत्तर दिया कि उन कन्याओं से तेरा सम्बन्ध हुये बिना तुझे दीक्षा ही नही दी जायगी, इसके बिना दीक्षा ही निरर्थक है। इनके बिना कोई भी दीक्षित न तो उन्नति कर सकता है, न किसी प्रकार का आनन्द प्राप्त कर सकता है, इसलिए उन दश कुलवान कन्याओ के साथ विवाह करना दीक्षार्थी प्राणी के लिए, पूर्ण सुख के इच्छुक के लिए अनिवार्य है।

तब निर्मलाचार्य ने उन दश कन्याओ के नगर, माता पिताओ के नाम, इत्यादि इस प्रकार बताये। चित्त सौन्दर्य नगर के राजा के दो रानियां, निष्प्रकपता और चारुति और उन रानियो से क्रमशः क्षान्ति और दया। शुभ्रमानस नगर के राजा शुभाभिसन्धि राजा को वरता और वर्यता रानियो से मृदुता और सत्यता। विशद मानस नगर के शुद्धाभिसधि राजा की शुद्धता और पापभीरूता रानियो से ऋजुता और अचोरता और शुभ्रचितपुर नगर के सदाशय राजा की वरेण्यता नामक रानी से दो पुत्रियां ब्रह्मरति और मुक्तता, सम्यग्दर्शन की पुत्री मानसीविद्या और चारित्रराज और

महादेवी विरति की कन्या निरीहता है। इस प्रकार दश कन्याओ से विवाह करना होगा। कर्म परिणाम राजा और काल परिणिति महारानी विचार कर सबकी सम्मति लेकर, पुण्योदय को भेजकर उन दश कन्याओ के माता-पिताओ को अनुकूल कर कर, स्वय कर्म परिणाम महाराजा ही कन्याए गुणधारण राजा को दिलायगा। पर इससे पहले राजा को सब सद्गुणो का अच्छी तरह अभ्यास कर अपनी आत्मा के विकास द्वारा उन कन्याओ को प्राप्त करने की योग्यता उपार्जित करनी पडेगी। जिसके परिणाम स्वरूप कर्मपरिणाम राजा गुणधारण के अनुकूल बनेगा और कन्याओ के माँ-बाप स्वत. ही कन्यादान के लिये तत्पर हो जायेंगे और वे कन्याएं भी उससे प्रेम करने लगेगी। राजा और इन कन्याओ के बीच यह प्रेम इतना सुन्दर और सुघटित होगा कि उसे कोई भी तोड़ नही सकेगा।

निर्मलाचार्य ने उन कन्याओ से विवाह की योग्यता प्राप्त करने के लिये गुणो को प्राप्त करने के उपाय बताये।

(१) क्षान्ति के इच्छुक को सब प्राणियो पर मैत्री भाव रखना, क्षमा द्वारा प्रीति बढ़ाना, स्वयं के दुष्कृत्यो की आलोचना और निन्दा करना, मुक्त आत्माओ की हृदय से प्रशसा करना, स्वय का तिरस्कार करनेवाले को भी हितेच्छू समझना क्योकि वह कर्म निर्जरा का कारण बनता है। अपने अंतःकरण को निश्चल बनाना।

(२) दया के इच्छुक को ऐसे कृत्य से दूर रहना जिससे किसी को किंचित भी कष्ट हो, सब प्राणियो के प्रति बंधुत्व

भाव रखना, परोपकार करना, पर दुख पर उदासीनता न रखना। सदा समस्त ससार को आनन्द प्राप्त हो ऐसे सुन्दर भाव रखना।

(३) मृदुता के इच्छुक को जाति मद, कुल मद, बल मद रुप मद, तप मद, धन गर्व, श्रुत गर्व (ज्ञान मद) लाभ मद नही करना, दूसरे वात्सल्य भाव रखे उसका भी अभिमान नही करना, नम्रता रखना, विनय करना, हृदय कोमल रखने का अभ्यास करना।

(४) सत्यता के इच्छुक को दूसरो की गुप्त बाते प्रकाश मे नही लाना, चुगली, पर निन्दा, कटु वचन त्याग, कपट पूर्ण बात का त्याग, वक्र बात त्याग, असत्य अथवा अर्ध सत्य का त्याग, निरर्थक बात का त्याग, अतिशयोक्ति आदि का त्याग करना। सत्य वास्तविक मृदतापूर्ण बात कहना चाहिए।

(५) ऋजुता को वरने के इच्छुक को कुटिलता और कपट पूर्ण व्यवहार का त्याग करना चाहिये, सदा सरल स्वभाव रखना चाहिए, किसी को छेडने परेशान करने के विचार त्याग देना चाहिए, मन निर्मल, व्यवहार स्पष्ट, सरल–उज्ज्वल विचार, अन्तःकरण शुद्ध, मन मे गाठ व कुटिलता का त्याग करना चाहिए।

(६) अचोरता को वरने के इच्छुक को, अन्य की पीड़ा से दुख होता है, पर द्रोह बुद्धि का नाश, पर का द्रव्य लेने की बुद्धि का त्याग, ऐसे कामो के कुपरिणामो को सदा ध्यान मे रखना चाहिए।

(७) मुक्तता को वरने के इच्छुक को पूर्ण विवेक, बाह्य या अंतरंग अधिपत्य से अलग, धनादि से विलग, धनपिपासा को दबाना, अपने अतःकरण को इनसे अलग दूर रखना, मूर्छा रहित होना चाहिए।

(८) ब्रह्मरति को वरने के इच्छुक को मनुष्य अथवा तिर्यंच, सब स्त्रियो को निज की माता समान मानना, स्त्रियो की सोयी हुई शय्या या बैठे हुए आसन पर अमुक समय (दो घड़ी) तक नही बैठना, स्त्री के अगोपाग की चर्चा भी नही करना, स्त्री पुरुष एकात, कमरे मे हो और उनके शब्द सुनाई दे ऐसे स्थान मे न रहना, पूर्व भोगो को याद न करना, उत्तेजक भोजन का त्याग, अधिक आहार का त्याग, श्रृंगार त्याग, भोग इच्छा का दमन।

(९) मानसी विद्या को वरने के इच्छुक को चिन्तन करना चाहिए कि सब पौद्गलिक वस्तुएँ अनित्य है, नाशवान है, घन, विषय, और स्वयं का शरीर भी अनित्य है और यह अपवित्रता से भरा है, यह और इनके अन्तिम परिणाम दुख पूर्ण ही है। इस तरह के विचारो मे चित्त को स्थिर करना चाहिए। स्वय अर्थात् स्वय की आत्मा इन सबसे अलग है, ऐसा चिन्तन करना चाहिए। तर्क और कुतर्क मे न पडकर सब वस्तुओ की आन्तरिक वास्तविकता पर विचार और मनन करना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को ही बुलाकर सद्‌बोध मत्री, सम्यग्दर्शन सेनापति की कन्या विद्या का पाणीग्रहण कराता है।

(१०) निरीहता को वरने के इच्छुक को चिन्तन

करना चाहिए कि इच्छाएं ही मन मे सताप उत्पन्न करती हैं। इन्द्रिय भोगाभिलाषा ही दुख का कारण है, जन्म होता है मरण के लिए, मिलाप होता है वियोग के लिए, सब प्रकार के सम्बन्ध हैरान करनेवाले हैं। प्रवृत्ति से दुख और निवृत्ति से सुख प्राप्त होता है।

आचार्य ने राजा को कहा कि इन दश कन्याओ से तुझे सम्बध करना हो तो उपरोक्त गुणो का बार २ अभ्यास कर। जब बहुत काल तक तू ऐसा करेगा तब ही कर्म परिणाम राजा, चारित्र राज की पूरी सेना से तेरा परिचय करायगा। तब तू उन सेनानियो के अनुकूल गुणो का अभ्यास कर उनके प्रेम को आकर्षित करेगा और वे अपने स्वामी चारित्रधर्म राजा के आज्ञाकारी होने के कारण उसके शत्रु महामोह राजा की समस्त सेना को मार भगा देंगे और इस प्रकार तुझे भाव राज्य प्राप्त हो जायगा। तू निजी वल वीर्य शक्ति से अवगत हो जायगा और शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर इन पत्नियो के साथ आनन्द भोगेगा। तुझे इस प्रकार ६ मास तक कठिन अभ्यास करना होगा।

राजा को दीक्षा लेने की जल्दी थी, वह ६ मास की देरी करना नही चाहता था। इस पर आचार्य ने कहा कि यह अनुष्ठान और सद्गुणो का अभ्यास परमार्थ से तो दीक्षा ही है। तू अनेक बार साधु भेष धारण कर चुका है पर तूने ये गुण प्राप्त नही किये, इसलिए वह द्रव्य दीक्षा, साधु भेष, निरर्थक हो रहे। उनसे उद्देश्य पूर्ति नही हुई। इसलिए उद्देश्य पूर्ति के लिए तू उन गुणों को प्राप्त कर, यही वास्तविक दीक्षा है।

निर्मलाचार्य ने आगे कहा कि यदि तू इस प्रकार गुणो का अनुशीलन और अभ्यास करेगा और अनुष्ठान करेगा तो थोडे ही समय मे सद्बोध मत्री तेरे साथ विद्या का लग्न कर देगा और स्वय तेरे साथ रहने लगेगा। वह बहुत कुशल और अनुभवी है। वह तुझे सलाह देता रहेगा और तेरा मार्ग दर्शक बनेगा।

राजा के मन मे इन बातो से बहुत हर्ष और आनन्द हुआ और उसके चित्त मे शान्ति हुई और वह आचार्य के उपदेशानुसार सद्गुणो का अभ्यास करने लगा।

भावनाओ का प्रभाव आश्चर्यकारी होता है। जैसे जैसे राजा मे उपरोक्त भावनाए बढती गई, महामोहादि निर्बल होते गये, हारते गये, सद्बोध का सेना बलवान होती गई और उस सेना ने पापोदय इत्यादि सेना को क्षण भर मे विजय कर लिया, और महामोहादि शत्रुओ और विशेषकर सवरण राजा को चकनाचूर कर दिया, और पापोदयादि दब गये। सद्बोध और विद्या की सेनाओ का जय जय कार हुआ, वे अधिक निकट आ गये और राजा को हर्षोल्लास और आनन्द हुआ और उसकी शुभ भावनाए ओर आगे बढती गई। आचार्य ने राजा को सावधान किया कि शत्रु नष्ट नही हुये है, अवसर देख रहे हैं जो आगे आये थे तो नाश हो गये हैं पर कितने ही तो शात बैठे है और तेरी चित्तवृत्ति मे छिपे बैठे है, परतु उनके मन मे अभी तेरे प्रति बहुत जहर भरा है। उन्हे अवसर मिलते ही सब मिलकर एक साथ आक्रमण कर देगे। जब ऐसा हो तब तुझे सद्बोध की सलाह के अनुसार करना

चाहिये और उसकी मदद से चारित्र राज के एक एक सैनिक द्वारा शत्रु के एक एक सैनिक को तू मार भगाना या दबा देना।

राजा कहता है मैं आचार्य के उपदेशानुसार चलने लगा तब सद्बोध मंत्री ने मुझे धर्म समाधि और शुक्ल समाधि नामक दो पुरुष और तीन नारियाँ-पीता, पदमा और शुक्ला से परिचय कराया जो तीनो ही धर्म समाधि की दासिया थी और तीसरी शुक्ला तो विशेष कर शुक्ल समाधि महा पुरुषो का ही पोषण करती है। इन तीनो को आचार्य ने महा उपकारी बताया और कहा कि इनके बिना वे दो महा पुरुष तेरे पास रह ही नही सकते, इन्ही के कारण वे महापुरुष तेरा महान उपकार करेगे और तुझे सुख का, महा राज्य का लाभ होगा।

कर्म रोग और उससे मुक्ति

यह संसार (ससारी प्राणी) अनेक प्रकार के रोगो से पीडित है। उन रोगो का निवारण करनेवाला सच्चा वैद्य सर्वज्ञ परमात्मा हैं, उनके शुद्ध सिद्धांतो की आगम रूप संहिता वनी हुई है। इनकी सर्व लोक उपकारी वुद्धि होती है और वे कर्म रूप भयकर रोगो को नष्टकरनेवाले होते हैं। दुर्भाग्य वश कई लोग उन्हे इस रूप मे स्वीकार नही करते है और कई भाग्यशाली उन्हे सच्चे वैद्य के रूप मे स्वीकार करते है। वे जब प्रभावशाली रीति से मोक्ष मार्ग वतलाते हैं तव दूषित आशयवालो को भी उनका प्रवचन सुनने मे आता है।

सर्वज्ञ महाराज की देशना, अनेक दृष्टि विन्दुओ से पूर्ण होती है। पर श्रोताओ मे से मन्द वुद्धिवाले इतने विशाल और उदार, शुद्ध वुद्धि के न होने के कारण उनका मनं कल्पित संकीर्ण अर्थ लगाते हैं और तदानुसार वे शास्त्र वनाते है। हम उन्हे ऊंट वैद्य कह सकते है। इन शास्त्रो मे कई वातें तो सर्वज्ञ तीर्थंकरो के वाक्यानुकूल है और कितनी ही उन अन्य दर्शन शास्त्रियो के स्वय मनोनुकूल या कल्पित है।

ससार मे भिन्न-भिन्न रुचि वाली जनता होती है। किन्ही को एक आशय की वातें रुचिकर होती है किन्ही को अन्य आशय की। इस प्रकार भिन्न भिन्न दर्शनो (और धर्मों) का प्रादुर्भाव हुआ।

इस प्रकार अन्य दर्शन भी तीर्थंकरो के दर्शनो मे से ही निकले हुये समझना चाहिये । इस प्रकार जैन दर्शन व्यापक है और सब मे समाया हुआ है ।

जैसे वैद्य शरीर मे वात, पित्त और कफ दोषो की चिकित्सा करता है उसी प्रकार सर्वज्ञ तीर्थंकर महा वैद्य राग, द्वेष और महामोह की चिकित्सा करते है ।

महामोह राग द्वेष के विरोधी उनके शत्रु सत्य, दया, ब्रह्मचर्य, शौच (बाह्य तथा अतरग) वीर्य (शक्ति) अकिंचन्ता अलोभता, गुरु भक्ति, तप, ज्ञान, ध्यान इत्यादि सुन्दर हैं और इन तीर्थियो को अच्छे तो लगते है, पर वे उन्हे पराई उधार ली हुई वस्तु समान लगते हैं, स्वय की होने जैसे नही लगते । इसका कारण यह है कि इन सत्य, दया ब्रह्मचर्य आदि सिद्धातों के साथ मे वे अपनी अपनी कल्पनानुसार अन्य बातें मिला देते हैं । उदाहरणार्थ इनमे वे यज्ञ, होम आदि जिनका इन सिद्धातो से किसी भी प्रकार का सबध नही है, मिला देते है । इस प्रकार सर्व प्रकार के उपाधि रहित गुणो का प्रतिपादक सर्वज्ञ दर्शन का अश सब दर्शनो मे मिलता है । इस प्रकार बाहरी लिंग (दिखाव, भेष) चाहे जो भी हो सद्भाव पूर्ण सर्व गुण जैन सिद्धात सब दर्शनो, धर्मों मे अन्तर्हित है ।

ससार मे कितने ही प्राणी, जिनकी प्रवृत्तिया दुष्ट है और जो शुद्ध क्रिया विहीन हैं, ध्यान करते हैं और धर्म का ऊपरी दिखावा करते हैं । इन ऊपरी बातो पर विवेकशील व्यक्ति को किंचित भी विश्वास नही करना चाहिये । जीवन मे जो मलीनारंभी है उसकी शुद्धि केवल बाह्य ध्यान से नही हो

सकती । जो तुच्छ सासारिक विषयो मे आरभ सारभ करने वाले है और बाह्य ध्यान करने मे तत्पर दीखते है, ऐसे प्राणी ध्यान करने से शुद्ध नही हो सकते । शुद्ध व्यवहार और अनुष्ठान क्रिया बिना मनुष्य के और ध्यान के सम्बन्ध ही कैसा ?

इसलिये जो प्राणी सर्व प्रकार व्याधियो से शुद्ध हो गया है वही मोक्ष के साधक उच्च प्रकार के ध्यान का साधन कर सकता है इस प्रकार जो कोई भी प्राणी उपाधि रहित होकर निर्मल आत्मा द्वारा ध्यान योग पर अग्रसर होता है वह चाहे तीर्थी (जैन) हो, या अन्य हो, वही वास्तविक जैन शासन मे है । इस प्रकार के मनुष्य बाह्य रूप से चाहे अन्य तीर्थी (धर्मावलम्बी) हो, वे ससार भ्रमण का अन्त करनेवाले है, वे वास्तव मे जैन तीर्थी ही है ।

सब बातो का सार यह है कि जिस प्रकार जिस औषधि से शारीरिक रोग नाश होता है वही उत्तम औषधि कह-लाती है, चाहे वह ऊट वैद्य की ही बताई हुई हो पर सच्चे वैद्य की दवा मे मिलती हो, उसी प्रकार जो अनुष्ठान क्रिया आदि, राग, द्वेष मोहादि रोगो का नाश करनेवाले है और महामलीन आत्मा को निर्मल करनेवाले है, वे अनुष्ठान चाहे जैन मतानुसार हो चाहे अन्य मतानुसार हो, उनको सर्वज्ञ के मत (जैन मत) के सम्मत और अनुकूल ही समझना चाहिये ।

इसमे भी कोई शका का स्थान नही कि कोई भी अनुष्ठान यदि चित को मलीन करनेवाला है और मोक्ष मे

बाधक है तो उसको करनेवाला चाहे जैन मुनि हो या श्रावक हो, वह जैन मत के बाहिर ही है उसको जैन धर्म का अंग नही समझना चाहिये। इस प्रकार भाव पूर्वक विशुद्ध भाव तीर्थ द्वारा मनुष्य संसार समुद्र को पार कर लेता है, इसमे बाह्य वेश की चिन्ता अर्थहीन है।

आत्मा दुष्ट विचार कल्लोलो के कारण पाप एकत्रित करता है और सुन्दर विचारो पूर्ण चित्त से पुण्य एकत्रित करता है। और जब उसका चित्त इन दोनो प्रकार की विचारधारा से उदासीन, निरक्षेप हो जाता है, जब न अनुकूल की तरफ राग और न प्रतिकूल की तरफ द्वेप होता है तब वह पुण्य और पाप दोनो से बच जाता है, इस प्रकार वह दोनो के परिणामो से बच जाता है।

जिस प्रकार अपथ्य भोजन से शरीर मे रोग उत्पन्न होते है, उसी प्रकार चित्त मे भ्रम उत्पन्न करनेवाले मन को मलीन करनेवाले हिंसात्मक (दूसरो को अहितकारी) अनुष्ठानो और कृत्यो से मन मे बुरे (कल्लोल) विचार उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार चित्त मे स्थिरता और निर्मलता उत्पन्न करनेवाले अहिंसामय अनुष्ठान (कृत्य) चित्त मे सुन्दर कल्लोल (विचार) उत्पन्न करते हैं आर शरीर को जिस प्रकार स्वास्थ्यवर्धक भोजन हितकर है उसी प्रकार यह सुअनुष्ठान भी आत्मा को हितकर है।

अब एक तीसरे प्रकार का ध्यान है जो चित्त मे होने वाले सब जालो (उद्वेगो) को दबा देता है उनका अन्त कर देता है। वह ध्यान ऊपर बताये हुये दोनो प्रकार के

विचारो की ओर उदासीनता पूर्ण है, वह कर्म निर्जरा का कारण है, आत्मा के साथ लगे शुभ और अशुभ दोनो प्रकार के कर्मों से मुक्ति दिलाता है, जो प्राणी मोक्ष का इच्छुक है, कर्मो से मुक्त होना चाहता है उसे चित्त के अनेक संकल्प विकल्प रूपी जालो का निरोध करने के लिये राग, द्वेषादि का विच्छेद करनेवाले भिन्न भिन्न प्रकार के उपायो का सतत उपयोग करना चाहिये।

ऐसे उपाय चाहे जैन शासन में बताये हुये हो चाहे अन्य मतावलम्बियो (अन्य तिर्थिको के)ने बताये हो इसमे आपत्ति नही। महत्व इस बात का है कि उपाय ऐसे होने चाहिये कि उनके द्वारा राग द्वेष का विच्छेद होकर चित्त मे संकल्प विकल्प शान्त हो जावें। बाहर से विशुद्ध कर्त्तव्य करनेवाले मोक्ष साधना की इच्छावाले प्राणी भिन्न भिन्न प्रकार के ध्येय का आश्रय लेकर मोक्ष की साधना करते है यह उनका माध्यस्थ भाव है। पर परमात्मा इत्यादि को ध्येय का आश्रय लेकर मोक्ष की साधना करते हैं यह उनका माध्य-स्थ भाव है। पर परमात्मा इत्यादि को ध्येय बनाने से जो सवेग उत्पन्न होता है और वह प्राणी के चित्त को प्रभावित करता है वैसा प्रभाव एक बिन्दु को ध्येय मानने से नही होता है। चित्त को सुन्दर आलबन मिलने से उसका स्वरूप भी सुन्दर हो जाता है यह बात स्वानुभव से ही सिद्ध है।

भिन्न-भिन्न प्राणियो की रूचियां भिन्न-भिन्न होती हैं। किसी के चित्त की शुद्धि एक आलंबन से होती है किसी को दूसरे से। इसलिये अन्त.करण को शुद्ध करने

वाली जिन मार्ग (आत्मविकास) की देशना (उपदेश) अनेक प्रकार की होती है। इसलिये यह भी बिल्कुल सभव है कि किसी भी विशुद्ध अन्त.करणशाली पुण्यात्मा को विन्दु इत्यादि ध्येय भी चित्त की विशुद्धि का साधन बन जाय।

विशुद्ध अत करण और माध्यस्थ्य के अभाव मे कितने ही मूढ प्राणी तत्त्व जानते हुये भी उनके विपरीत आचरण करते है इस प्रकार राग द्वेष आदि के पर वश मे पडे हुये मलीन अत.करणवाले प्राणियो का ज्ञान विपरीत फलदायक होता है स्पष्ट सूर्योदय हो तो भी गहरी धुआ से अधेरा हो जाता है इसी प्रकार ज्ञान प्राप्त कर भी वैराग्य (राग द्वेष से मुक्ति) का लाभ न ले सके ऐसे प्राणी योग्य दृष्टि के अभाव मे अज्ञान रूपी अधकार की धूओ से भरे ससार रूपी कमरे मे पड़े है, ऐसा ही समझना चाहिये। इसका आशय यह है कि ज्ञान की किरणो से दीप्त योग रूपी सूर्य हृदय मे जगमगाता हुआ उदय हो उस समय अर्थ और काम का स्पृहा रूपी अधकार असम्भव है। इसलिये निर्मल चित्तवाले, वैराग्य के अभ्यास के इच्छुक प्राणियो के आलबन अनेक प्रकार के सभव हैं क्योकि ये आलंबन आखिर उसे माध्यस्थ्य भाव की ओर ले जाते है। इसलिए कुतीर्थियो (अन्य मताव-लम्बियो) ने जो ध्येय के अनेक भेद बताये है वे जिनमत रूपी समुद्र के अश ही समझना चाहिये। इस प्रकार अन्य दर्शनों की बाते प्राय: कर्म रोग बढानेवाली होती हुई भी उनकी कई बाते कर्म रोग नाशकारी भी हो सकती है। इसे ऐसा ही समझना चाहिये कि उनमे सर्वज्ञो के वचनो के अश है।

जैन दर्शन की व्यापकता

सम्यग्दृष्टि, वस्तु को सत्य दृष्टि से देखनेवाले की अपेक्षा से तो जैन दर्शन व्यापक है। गहरे विचार और तत्व चिन्तन के परिणाम रूप यह निश्चय है। भेद बुद्धि संकीर्ण दृष्टि के परिणाम (कूडा कर्कट) से उत्पन्न होती है और प्राणी को मोह मे गिरा देती है। जो प्राणी तत्व को समझ सकते है वे उसकी विशालता और व्यापकता समझते हैं, उनकी यह भेद बुद्धि नाश हो जाती है और फिर उनके हृदय मे किसी प्रकार की उलझन नही रहती है। ऐसे प्राणी की दृष्टि मे देव एक ही है, वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, द्वेष से मुक्त, महामोह को नाश करनेवाला और शरीरधारी होता है तव ससार भुवन का स्वामी दीखता है और शरीर त्यागने पर मोक्ष गामी होकर प्रभु कहलाता है। केवल वह ही (सत्य अर्थ मे) देव है।

जो प्राणी ऐसे सर्वज्ञ सर्वदर्शी, वीतराग, गत द्वेषी और महामोह पर विजयी का स्वरूप मन मे वरावर समझ कर निश्चय कर लेता है, और मान्यता दृढ़ कर लेता है, उसे नाना प्रकार के शब्दो (नामो) से किंचित भी भेद बुद्धि उत्पन्न नही होती है। उसकी तो दृष्टि स्वरूप पर ही रहती है, नाम पर मोह नही होता। उसे लोग बुद्ध कहो या ब्रह्म कहो, विष्णु कहो या महेश्वर कहो, जिनेश्वर कहो या और किसी भी नाम से कहो, सच्ची दृष्टिवाले परवाह नही करते। शब्दो के भेद से अर्थ भेद नही करते। उसको जो इस रूप मे मानते हैं उसीके वे प्रभु है। यह मेरे है, यह

दूसरे के हैं, यह सब झूठ है, भ्रम है। जो इस भाव से ही समझते हैं, और इसी भाव से उसकी इच्छा (भक्ति) करते हैं, उनका ही वे कल्याण करते हैं (उसी का कल्याण होता है) इन देवों के तो सब क्लेशो का नाश हो चुका है इसलिए वे तो सब प्राणियो के लिए समान हैं। जो उन्हे इस रूप मे जानता है उन प्राणियो को वे मुक्ति करते हैं (वे प्राणी मोक्ष प्राप्त करते है) ससारी आत्माओ मे तो कर्म (मल) के कारण अनेक भेद है, उच्चता नीचता इत्यादि है पर परमात्मा तो कर्म प्रपच से सर्वथा मुक्त होने के कारण उसमे किसी भी प्रकार के भेद सभव नही।

जो महा भाग्यवान प्राणी ऐसे सर्वज्ञदर्शी आदि विशेषणो युक्त, शुद्ध बोध के प्रभावक, अनन्त शक्ति के आधार परन्तु संसार से मुक्त करानेवाले हैं, उनको अच्छी तरह पहचानता है और भाव पूर्वक उनका आदर करता है, उन प्राणियो के मन मे इनका सत्य स्वरूप पूर्ण रीति से जम जाता है, उनके मन मे इनके सम्बन्ध मे कोई वादविवाद या मत भेद का कारण ही नही रहता। पर कई मूर्ख अथवा अल्पज्ञ लोग परमात्मा को राग द्वेष रूपी मल युक्त मानते हैं, उनका ये तत्व जाननेवाले महापुरुष विरोध करते हैं पर वह भी करुणा बुद्धि से।

परमार्थ दृष्टि से ससार मे धर्म भी एक ही है, यह कल्याण परम्परा का हेतु है। यह स्वय शुद्ध है और शुद्ध गुणो से भरपूर है। ये गुण दश प्रकार के है, क्षमा, मार्दव (नम्रता) शौच (बाह्य आतर पवित्रता निर्मलता) तप

(वाह्य और अभ्यतर) संयम (सत्तर प्रकार का) मुक्ति (लोभ त्याग) सत्य, ब्रह्मचर्य, आर्जव (सरलता) और त्याग (परिग्रह मुक्ति)। पडित लोग इन दश धर्म को स्वर्ग और मोक्ष देनेवाले मानते हैं पर मूढ लोग धर्म की इससे विपरीत ही कल्पना करते है। मोक्ष को कोई सत्व नाम से पुकारते है कोई लेश्या शुद्धि कहते हैं और कोई अन्य नामो से पुकारते है। यह केवल नाम का भेद है अर्थ का भेद नही है।

कई विशुद्धि के चार भेद करते है—ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य और धर्म। रजस और तमस से जव सत्व घिर जाता है तव वह प्रकाश रहित हो जाता है तव उपरोक्त ऐश्वर्य आदि गुण विपरीत हो जाते है। रजस के आवरण से वैराग्य के वदले अवैराग्य, तमस से ऐश्वर्य के वदले अनैश्वर्य हो जाते है। सत्व जव इन कारणो से मैल वाला होता है तव वह संसार भ्रमण और दुख का कारण हो जाता है, मैल रहित और शक्ति से वह भरपूर होता है तव सुख और मोक्ष का कारण हो जाता है। सत्व को निर्मल रूप मे प्राप्त करने के लिये ध्यान, व्रत आदि अनेक अनुष्ठान वताये गये हैं। और शुद्ध सत्व ही दैवी तत्व है। इसके आश्रित ज्ञान सच्चा ज्ञान है श्रद्धा सची श्रद्धा है, उसे शुद्धतर करनेवाली क्रिया सच्ची क्रिया है और उस मार्ग पर चलना ही मोक्ष मार्ग पर चलना है। जो शुद्ध वुद्धि पूर्वक तत्व को जान लेते हैं वे मेरू पर्वत की तरह निश्चल चित्तवाले, भ्रान्ति रहित, शका रहित हो जाते हैं।

शुद्ध सत्व लोक मे अविचल है, एक है और प्रमाण से

सिद्ध है। उसी तरह मोक्ष भी अविचल एक और सिद्ध है, अत्यन्त आल्हादकारी होने से सुन्दर और सुसाध्य है। अनन्त शुद्ध वोध (ज्ञान) अनत दर्शन, अनत आनन्द और अनंत वीर्य वाले अमूर्त आत्मा का निज स्वरूप मे रहना ही मोक्ष का लक्षण है, वही मोक्ष है। इसे संसिद्धि कहो, या निवृत्ति कहो, शान्ति कहो चाहे शिव कहो, अक्षप अव्यय अमृत कहो चाहे ब्रह्म कहो या निर्वाण कहो, चाहे ये सब भिन्न भिन्न शब्द हो, पर सब मोक्ष ही के द्योतक नाम है।

ये सब प्रकार के कर्तव्य, लेश्या शुद्धि के लिये है, लेश्या शुद्धि मोक्ष के लिये हो है। जिससे आत्मा स्वरूप सिद्धि प्राप्त करे वही मोक्ष है और उसी प्रकार की लेश्या शुद्धि ही मोक्ष है और उसी प्रकार की लेश्या शुद्धि ही मोक्ष का कारण है।

लेश्या शुद्धि की विशेषता या अल्पता के कारण देव या मनुष्य गति मे संयोग वश सुख मिल जाता है, वह त्यागने योग्य वस्तु है।

इस प्रकार सद्देव, सद्धर्म की व्याख्या करनेवाले उत्तम शास्त्र इस प्रकार के मोक्ष का प्रतिपादन करते हैं। जो शास्त्र दृष्ट और अदृष्ट (प्रत्यक्ष और अनुमान) प्रमाण से अवाधित और सर्व प्रमाणो से प्रतिष्ठित हैं वे ही सर्वत्र व्यापक हैं, ऐसे हो शास्त्र व्यापक माने गये हैं। इनमे विशेष प्रकार के भाव हैं पर उनका विविध प्रकार के शब्दो द्वारा व्यवधान किया हुआ है। उसे कोई वैष्णव कहते हैं, कोई ब्राह्मण, कोई माहेश्वर नाम देते है तो कोई बुद्ध कहते हैं, कोई

जैनेन्द्र नाम देते है। इसमे कोई वाधा आपत्ति जैसी वात नहीं है। मूल भाव नाश न हो तो शब्दो के भेद मे कोई दोष नही, समझदार मनुष्य तो भीतर का भावार्थ ही विचारते हैं। मात्र शब्द या नाम पर आसक्त नही होते। वुद्धि पर आवरण आने के कारण ही विकार दृष्टि हो जाती है तव ही दर्शनों मे भिन्नता दीखने लगती है, यह खोटा मोह मात्र है। जव प्राणी पर से अहकार हट जाता है, जव सव वस्तुएँ उसके वुद्धिगोचर हो जाती है और उसे जव सच्चे दर्शन का ज्ञान हो जाता है तव उसमे भेद वुद्धि नही रहती, क्योंकि शुद्ध दर्शन मे भेद वुद्धि को स्थान ही नही है।

सव वादियों के विचार से आत्मा का अस्तित्व तो है ही इन आत्माओं मे जो मोहनीय कर्म रूप मैलवाली होती है वह मोक्ष मार्ग को न तो देख सकती है और न जान सकती है, आंख मे मैल होने से वस्तु दर्शन वरावर नही होता है उसी प्रकार मल वाले आत्मा की स्थिति है। इस कर्म मल के क्षय होने से, नाश होने से आत्मा यथा स्थित मोक्ष मार्ग को देख और जान सकती है। फिर यह आत्मा चाहे जहां हो, उसके लक्ष मे स्वत मोक्ष मार्ग आ ही जाता है। ऐसी स्थिति होने पर प्राणी परमार्थ को वतानेवाले सच्चे दर्शन को वरावर देख सकता है, अपना दुराग्रह त्याग देता है और सत्य मार्ग पर आ जाता है। पर जो प्राणी मूढ होता है गुण दोष नही समझ सकता है, न उसकी परीक्षा कर सकता है, ऐसा प्राणी सिद्धात रूप विषम (कठिन) ज्ञान को किस प्रकार प्राप्त कर सकता है या स्वीकार कर सकता है? मैं अच्छा हूँ

तू बुरा है, मेरा दर्शन सुन्दर है, तेरा असुन्दर है, ऐसा बोलना या मानना, या ऐसी बातें करना केवल द्वेष और मत्सर है।

जो प्राणी यथा योग्य दृष्टि वाले होते हैं वे तात्त्विक शुद्ध और विशाल दर्शन में ही रहनेवाले हैं, उनमे यह मेरा यह तेरा ऐसी दृष्टि नाश पा चुकी होती है। ऐसे प्राणी वाद विवाद मे नही उतरते। वे इस बात का भान कराते हैं कि सब के भीतर गहराई मे उतरें तो समानता ही दृष्टिगोचर होगी। जो मल नाश न होने के कारण विपरीत दृष्टिकोण रखते है और अभिमान से अपने दर्शन को ही व्यापक और सत्य कहते हैं, उनसे विवाद न कर बन सके तो तत्त्व मार्ग पर लाने के लिये बोध देना चाहिये। इस ससार मे मोह का विनाश करने के बराबर अन्य कोई उपकार नही है।



सम्यग् ज्ञानी का दृष्टिकोण

प्राणी अनादि काल से भव भ्रमण करता हुआ अनन्त बार भिन्न भिन्न योनियो मे भ्रमण करता हुआ मनुष्य योनी मे भी अनत बार जन्म ग्रहण कर चुका है। इस भ्रमण में कई बार सद्गुण प्राप्ति के अवसर और प्रसग आये और कई बार उन्हें प्राप्त कर प्रगति भी की है और दोष सेवन से पतन भी किया है पर इसी तरह, जिस प्रकार नदी मे गुड़ता पड़ता पत्थर चिकना हो जाता है उसी तरह प्राणी का भी रखडपट्टी करते करते कुछ आत्म विकास होने लगता है और उसे सम्यग् ज्ञान (सच्चा ज्ञान) प्राप्त हो जाता है तब उसे जो अनुभव होता है और दूसरो को भी बतलाता है वह इस प्रकार है।

यह समस्त ससार प्रपच एक प्रकार का नाटक है जिसमे भाग लेनेवाले के नये नये भेष बनाने की तरह प्राणी भी नये नये शरीर धारण करता है। नाटक करनेवालो के नाच आदि चेष्टाओ और खेलो की तरह यह प्राणी भी अनेक योनियो मे प्रवेश करता है और तरह तरह के सम्बध करता है और भोग भोगता है। इस प्रकार यह भव प्रपच नाटक के समान ही है। द्रव की अपेक्षा एक प्राणी की आत्मा एक ही है वह अकेला ही है और मनुष्य गति या अन्य गति मे अनेक नामो द्वारा जानी जाती है वे उसके पर्याय मात्र है, वे सब कृत्रिम, बनावटी झूठे और अस्थाई हैं विवेकी मनुष्यो के वे पर्याय विश्वास करने योग्य नही है। यह भव प्रपंच लोक

स्थिति के नियमानुसार है, काल परिणिति के बताये हुये हैं, उस पर कर्म परिणाम राजा की सत्ता है, इसका यही स्वभाव है, भवितव्यता भी इसी प्रकार की है, निज भव्यता भी है। इस प्रकार लोक स्थिति, काल, कर्म, स्वभाव, भवितव्यता और निज भव्यता, एक दूसरे की अपेक्षा से कारण समुदाय रूप एकत्रित होकर भव प्रपच उत्पन्न करते है। इन कारणो

परिपक्व होने पर इस प्रपच को नाश करनेवाले, उसका उच्छेद करनेवाले परमेश्वर की कृपा से निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है। इस विशुद्ध ज्ञान के बल से आत्मा जानती है कि मुझे जो अभी सुख दुख होता है, या मुझे संसार मे रखडना पड़ता है अथवा अन्त में मोक्ष प्राप्त हो सकता है, यह सब परमेश्वर की आज्ञा का आराधन (पालन) न करने, या करने अर्थात् उनके बताये हुये नियमो का पालन न करने या करने के परिणाम हैं या होगे। लेश्याओ को सुधारना निर्मल बनाना उसकी आज्ञा पालन ही है और लेश्याओ (आत्म परिणति) को मलीन करना आज्ञा की विराधना है। ऐसे विचार और निर्णय के परिणाम स्वरूप, आत्मा परिणति (लेश्या) को शुद्ध करनेवाले गुणो मे प्रवृत्ति होती है और लेश्या को मलीन करनेवाले अवगुणो से दूर हटती जाती है। इस प्रकार आत्म परिणति-लेश्या को ढूढ कर शुद्ध करती हुई उस पर विजय प्राप्त कर स्वय अलेशी—लेश्या विहीन हो जाती है। तब वह निज के असली रूप (स्वरूप) मे स्थित हो जाती है और स्वय परमेश्वर हो जाती है, परमात्मा बन जाती है। इस प्रकार का सत्य स्वरूप उसे निर्मल ज्ञान द्वारा भाषित हो जाता है और उस स्वरूप का वह अन्य प्राणियो के सामने प्रतिपादन करता है।

उपमिति भव प्रपंच कथा का भावार्थ

इस ससार मे कुशल कर्म (पुण्य) के फल (विपाक) के परिणाम स्वरूप, ऐसी कोई वस्तु नही जो प्राप्त करना दुर्लभ हो। इसके द्वारा सब प्रकार के भोग और सुख मिल सकते है। ऐसा होने पर भी बुद्धिमान मनुष्यों के लिये तो, शम सुख जो शान्ति का साम्राज्य है, उसे ही प्राप्त करना योग्य और उचित लगता है।

मनुष्य प्राणी चाहे जितनी ऊंची पदवी प्राप्त कर ले, पर जो इस पापी कर्म को शत्रुता को नही समझता है, तो जब उस (पाप कर्म) का (जोर) प्रभाव बढ जाता है तब प्राणी को भयंकर ससार समुद्र मे जोर से फेंक देता है, ढकेल देता है।

प्राणी ने नरक मे ले जाने जैसे कितने ही भयकर कर्म एकत्रित किये हो तो भी सदागम द्वारा बोध (ज्ञान, प्राप्त हो और उस पर एक क्षण भर भी उस का चित्त लगे तो उसके पाप नाश हो सकते हैं और क्षण भर भी वह यदि तदानुसार करे तो अन्त मे पाप मुक्त होकर मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है यह बात समझकर जितना जल्दी हो सके मन के मैल को दूर हटाओ, निकालो दो फेंक दो और सदागम की सेवा करो (आज्ञा पालन करो) जिससे आगम (तीर्थंकर वचन) के आधार पर तुम भी मोक्ष प्राप्त कर सको।

भिन्न-भिन्न प्राणियो की भव्यता (मोक्ष की योग्यता) भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। इसलिये अपने-अपने कर्मानुसार वे ससार भ्रमण करते है। इसका आधार प्रत्येक की भव्यता पर है।

इसलिये सब बातो का गहरा भावार्थ मन मे रखना हो और सब रहस्य समझ लेना हो तो संक्षेप मे एक बात अपने हृदय पर अंकित कर लो कि इस ससार मे जिन मार्ग प्राप्त कर जैसा और जितना बन पड़े उतना प्रत्येक मनुष्य को मल विशोधन करने मैल या पाप को ढूढ ढूढ कर विच्छेद करने और काट फेकने का काम करना चाहिये।



श्री सिद्धर्षिगणि का सन्देश

इस ग्रथ मे युक्ति पूर्ण वचनो द्वारा जो जो बातें कही गई है वे सब भावार्थ से भरपूर हैं। इन सब बातो पर शुद्ध बुद्धि द्वारा विचार करो और उन विचारो के आधार पर, हे भव्य प्राणियो यदि तुम्हे वे सब विचार बिलकुल निष्पाप लगे और तुम्हे हितकारी जान पडे तो पीछे मुझ पर कृपा कर इन बातो को जल्दी स्वीकार करलो क्योकि इसमे तुम्हारे स्वार्थ की परम सिद्धि है।

इस ससार मे शुभ कर्म के फल के रूप मे कोई ऐसी वस्तु नही जो प्राप्त होना कठिन है। इससे सब प्रकार के मार्ग और सुख मिल सकते है तथापि बुद्धिमान मनुष्य तो 'शम सुख' जो कि शान्ति का साम्राज्य है उसे ही प्राप्त करना चाहते हैं।

प्राणी ने नरक मे जाने योग्य भयकर कार्य किये हो तब भी उसे सदागम का ज्ञान प्राप्त हो और उस पर एक क्षण के लिये भी उसका मन लगे तो उन पापो का नाश हो सकता है और क्षण भर भी यदि वह उसके अनुसार करे तो वह पाप रहित होकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

जो प्राणी अविवेक के प्रभाव मे आकर अभिमान करता है और जगत को अहितकर असत्य बोलता है, वह निश्चय ही इसी भव मे ही अपने पाप के भार से दुख पाता है और अनेक प्रकार से हैरान होता है।

इस ससार रूपी बडे गहन वन मे फिरते फिरते बड़ी मुश्किल से कभी बहुत सुन्दर मनुष्य भव प्राप्त होता है। हे मनुष्यो! ऐसे प्रसग मे जिस सुख की कोई अन्य सुख की उपमा नही दी जा सकती है, उसे प्राप्त करने के यत्न करो और खास करके, ऐसे सुन्दर भव को अभिमान करने मे, असत्य बोलने या जिव्हा लोलुपता (इत्यादि) मे नष्ट न करो।

लेखक की अन्य कृति
जो
प्रकाशित हो चुकी है
जीवन दर्शन
कुछ सम्मतियां

श्री कल्याणमल लोढा, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता।

"जैन धर्म की मूल रूप चिंतना को समझने के लिए यह ग्रंथ अत्यन्त उपयोगी और सार्थक होगा।"

श्री अमरभारती अंक मार्च १९६८

"निबन्धो मे एक अध्ययनशील चिन्तक की निर्भय विचारशैली का स्पष्ट प्रतिबिम्ब झलक रहा है। लेखक ने अध्यात्म, धर्म, कर्म, अहिंसा जैसे विषयो पर काफी गहराई एव आधुनिक चिंतन के आलोक मे अच्छा प्रकाश डाला है।

धर्म केवल परलोक का सौदा खरीदने के लिए सिक्कामात्र नही है, वह तो जीवन का एक उदात्त और स्पष्ट दर्शन है। रूढीवाद और कुण्ठाग्रस्त मानव उसे विकृत एव खण्डित रूप मे देखता रहा है, इसलिए यह जीवन का दर्शन न रहकर मात्र चिन्तन का झाड बन गया है। लेखक ने सयत किन्तु उग्र शब्दो मे धर्म की स्वीकृति के साथ इस सत्य की घोषणा की है कि "धर्म इस जीवन मे सुखदाई है, इसमे सन्देह नही, किन्तु जिस रूप मे धर्म बताया जाता है, उस रूप मे नही" लेखक धर्म को जीवन के कण-कण मे व्याप्त देखना चाहता है।

Shri Rishabh Chand–Shri Arvindo Ashram, Pondichery

"It is an admirably lucid exposition of some of the cardinal tenets of Jainism which have a direct bearing on the daily life of the Jains".

श्री ऋषभ दास रांका, बम्बई

"आपने धर्म की व्याख्या और उपयोग के विषय में लिखा वह समयोपयोगी तथा नई पीढ़ी के बुद्धिवादियों के लिए समझने में आने जैसा है। धर्म पर इसी दृष्टिकोण से लिखा जाना चाहिये।"

दैनिक हिन्दुस्तान, देहली ११-९-६७

'लेखक ने आत्म विज्ञान, अध्यात्मवाद, कर्म विज्ञान, अहिंसा और अहिंसा साधन, पांच विषयों पर विस्तार के साथ अपने विचार प्रगट किये हैं। इन सभी विषयों का जैन धर्म के आधार पर सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया गया है। लेखक का कहना है कि कर्मविज्ञान हमारी दृष्टि को व्यापक करता है। वह मनुष्य का पथप्रदर्शक है। उन्होंने इस बात को सुन्दर ढंग से प्रकट किया है कि सांसारिक जीवन और धार्मिक जीवन अलग अलग नहीं है। लेखक ने अहिंसा की बड़ी सुन्दर ढंग में व्याख्या की है। उनका कहना है इसके द्वारा आत्मा को पूर्ण सुख की प्राप्ति होती है।

श्री पन्नालाल भंडारी बी. ए. (Hons) बी कोम. एल. एल. बी. डी. पी. ए, लंदन

"पुस्तक का मेरे पर प्रभाव पड़ा। भाषा सरल, लेखन शैली सादी और क्लिष्ट सिद्धान्तों का सहज ही में ग्रहण हो जाता है। इस पुस्तक का प्रचार जितना ज्यादा हो उतना अच्छा है।"

श्री दलसुख मालवणीया

"आत्मा आदि विषयो की बुद्धिगम्य व्याख्या रोचक है और प्रेरक भी।"

मुनि श्री न्याय विजय जी (माडल)

"आप के लेख विचारपूर्ण एव मार्गदर्शक निकलते है। ऐसे सशोधित विचारो का प्रचार आज अपेक्षित है। मेरा भी यही मन्तव्य है कि परलोक सुधार तथा इहलोक सुधार का मार्ग अलग-अलग नही है, एक ही है।"

मूल्य एक रुपया मात्र।

लेखक की अन्य कृति
जो
प्रकाशन के लिये तैयार है
(श्री हरिभद्रसूरि तथा श्री हेमचन्द्राचार्य के ग्रन्थो पर आधारित)

"अध्यात्मविज्ञान-योग प्रवेशिका"

विषय-सूची

प्रस्तावना

प्रकरण १- कर्म विज्ञान (प० सुखलालजी के 'जैन धर्म का प्राण' पर आधारित)

१. कर्म तत्त्व
२. कर्मवाद की दीर्घ दृष्टि
३ कर्मशास्त्र अध्यात्म शास्त्र का अग है
४. कर्मबधन कब न हो
५. कर्मबध का कारण
६ कर्म से छूटने के उपाय
७. कर्म सिद्धान्त के विषय मे डा० मेक्समूलर का अभिप्राय
८. उपसहार
९. कुछ उद्धरण

प्रकरण २—योग बिन्दु (श्री हरिभद्रसूरि कृत 'योग बिन्दु' आचार्य श्री ऋद्धिसागरसूरि कृत गुजराती भाषा निबध बुद्धिसागर विवेचन युक्त ग्रन्थ पर आधारित)

श्री जिनदत्तसूरि ज्ञान माला

के

अभिनव प्रकाशन

१. रत्नाकर पच्चीसी
२. दादा गुरु इकतीसा
३. दादा गुरु की अमर कहानी
४. प्रभु गुरु स्तवन
५. आचार्य तुलसी का समन्वयात्मक मंच सफल हो
६. इतिहास की खोज
७ Mahavir and Jainism
८. अभिनिवेश शिथिल होते ही सत्य की झांकी हो जाती है
९. संवत्सरी
१०. सेठ मोतीशाह
११. संसार बाजार
१२. नमस्कार चिंतामणि
१३. जैसलमेर पंच तीर्थी का इतिहास
१४. धर्म व संसार का स्वरूप
१५. जीवन दर्शन